श्री मनोहरदास जैन ग्रन्थ मालाका पंचम पुष्प

ॐ

# आदर्श-जीवन

अर्थात्

## जैनाचार्य श्री मोतीराम जी महाराज का जीवन चरित्र

लेखकः—

मुनि श्री अमरचन्द्र जी

प्रकाशकः—

स्वर्गीय रा० ब० लाला सुखदेवसहाय जी के सुपुत्र

सेठ ज्वालाप्रसाद माणकचन्द

महेन्द्रगढ़ (पटियाला)

आवृत्ति १०००

सप्रेम— भेंट

वीराब्द २४५८ विक्रमाब्द १९८८

जोशी रमेशप्रसाद के प्रबंध से श्री कौशिक प्रिंटिंग प्रेस, महेन्द्रगढ़ में छपा

प्रकाशकः—

लाला ज्वालाप्रशाद माणकचन्द
जैन जौहरी

सूचनाः-

जिन प्रेमी सज्जनों को इस पुस्तक की आवश्यक्ता हो वे डाकखर्च के लिए २ आनेका टिकट भेजकर मँगवालें।

मिलनेका पताः—

राजाबहादुर—

लाला सुखदेवसहाय ज्वालाप्रशाद जैन जोहरी
लाला भवन महेन्द्रगढ़ (पटियाला)

मुद्रकः—

श्री कौशिक प्रिंटिंग प्रेस, महेन्द्रगढ़

---

नोटः- भूमिका के ४ पन्ने एक दो शब्द! बाहर के छपे हुए हैं।

मैनेजर प्रेस

# आदर्श जीवन—

## • शिक्षा •

"जीवन चरित महा-पुरुषों के"
"हमें शिक्षणा देते हैं।"
"हम भी अपना अपना जीवन,"
"स्वच्छ रम्य कर सकते हैं॥"
"हमें चाहिये हम भी अपने,"
"बना जायँ पद-चिन्ह ललाम।"
"इस भूमी की रेती पर जो,"
"व्यक्त पड़े आवें कुछ काम॥"
"देख देख जिन को उत्साहित,"
"हों पुनि वे मानव मतिधर।"
"जिन की नष्ट हुई हो नौका,"
"चट्टानों से टकराकर॥"
"लाख लाख संकट सहकर भी,"
"फिर भी साहस बांधे वे।"
"जाकर मार्ग मार्ग पर अपना,"
"गिरिधर" कारज साधें वे॥"

# समर्पण

प्रिय सुरुचि संपन्न बन्धुओं !

कृपया लीजिए, यह पुस्तक आपके सुपवित्र-कर कमलों में सादर सस्नेह समर्पित है। आप इसे प्रेम पूर्वक बारंबार पढें और तदनुसार सत्यता, दयालुता, निष्पक्षपातता, इन्द्रिय निग्रहता, धीरता, धार्मिकता आदि एक-से-एक सुन्दर-आदर्श गुणों को दृढता के साथ धारण करें। ऐसा करने से ही जीवन स्वच्छ-सौम्य बन सकता है। अन्यथा नहीं। सत्पुरुषों के मार्गपर यथाशक्ति चलना ही हम सब कल्याणाभिलाषी मनुष्यों का प्रधान कर्तव्य है।

लाला भवन
महेन्द्रगढ़
फाल्गुण बदी पंचमी

समर्पकः—

ज्वालाप्रसाद मानकचन्द

# एक दो शब्द !

इस भारत वर्ष की पुण्यमयी भूमि पर 'आत्म ज्ञान' का दिव्य प्रकाश फैला हुआ है-'अध्यात्म रस' की पवित्र गङ्गा बह रही है-और 'आत्म कल्याण' की सुरम्य वाटिका में नाना प्रकार के सुगंधित पुष्प खिल रहे हैं-जिन पर अध्यात्म रस के प्रेमी भंवर आत्म गुण गान करते हुये अध्यात्म रस का पान कर रहे हैं-और निजात्म शक्ति प्राप्त करके शिवलोक के ऊंचे शिखर पर चढ़ने को लालायित हो रहे हैं-संसार के भूले भटके जीव मिथ्यात्व के कंटकाकीर्ण मार्ग से दूर हट कर आत्म कल्याण की सुरम्य वाटिका तक कैसे जा सकते हैं और कौन उनको पहुँचा सकता है यह बात ज़रा विचारणीय है, जैसे अबोध बालकों के हृदय पटल पर अच्छी शिक्षाओं को अंकित करने के लिये उनके माता पिता अनेक शिक्षाप्रद कहानियें सुनाते हैं, ठीक वैसे ही भोले जीवों को कल्याण वाटिका तक पहुँचाने के लिये आदर्श पुरुषों, पूज्य महात्माओं, और परोपकारी जीवों के पवित्र जीवन की सच्ची और महत्व पूर्ण घटनायें पथ प्रदर्शक हैं।

आप किसी भी मत के धार्मिक साहित्य पर दृष्टि डालियेगा आपको उन सब में उनके आदर्श पुरुषों का जीवन चरित्र अवश्य ही दिखाई देगा-हिन्दुओं के अठारह पुराण ( महाभारत, भागवत, रामायण आदि ) जैनों का प्रथमानुयोग ( आदि पुराण, उत्तर पुराण, हरिवंश पुराण, पाण्डव पुराण, पद्मपुराण आदि ) और बुद्धों, मसीहों, यवनों, सिक्खों, पारसियों, आदि के कथाग्रंथ इस बात की सचाई के साक्षी हैं।

आप संसार के ऐतिहासिक ग्रंथों को देख जाईये, और उनके पन्ने पलट जाईये—उनमें आपको वीर पुरुषों की वीरता, धीर पुरुषों की धीरता दयालु पुरुषों की दयालुता, उदार पुरुषों की उदारता, कायर लोगों की कायरता, विलासी लोगों की भोग विलासिता, और नीच लोगों की नीचता के अनेक उदाहरण मिलेंगे—उनको पढ़ सुनकर जिस प्रकृति का जो मनुष्य होगा—वह उनसे वैसी ही शिक्षा प्राप्त कर सकेगा—इसी प्रकार आदर्श पुरुषों के जीवन चरित्र संसारी मनुष्यों के जीवन को आदर्श बनाने के लिये सहकारी होते हैं—जिनसे वे लाभ उठाते और आनन्द पाते हैं शारीरिक शक्ति के आश्चर्य जनक कर्तव दिखाने वाले प्रो० राममूर्ति ने स्वयं कहा था कि "हमारी शारीरिक शक्ति के सम्पन्न साधक श्री० भीम, अर्जुन, हनुमान आदि पुराण पुरुषों के जीवन चरित्र हैं—हमने उनको पढ़ा और शक्ति सञ्चार की शुभ धारणा को लेकर ब्रह्मचर्य का पालन किया जिससे आज हम इस दर्जे पर पहुँचे हैं"—

यदि वास्तव में देखा जाय तो आदर्श पुरुषों के जीवन चरित्रों ने हमारा बड़ा भारी उपकार किया है श्रीराम से पितृ-भक्ति, लक्ष्मण से भ्रातृ प्रेम, सीता जी से पतिव्रत धर्म, हनुमान से स्वामी सेवा, विभीषणसे मैत्री भाव, युधिष्ठिर से धर्म प्रेम, हरिश्चन्द्र से सत्य वादिता, और कृष्ण से गोपालन की जो शिक्षा मिलती है उसको सभी कोई जानते हैं—इस ही प्रकार प्रत्येक धर्म पुराण कथा, और जीवन चरित्र आत्मोन्नति का पाठ पढ़ाते और उच्च शिक्षा देते हैं।

जिस प्रकार शारीरिक शक्ति के वास्ते भीम, हनुमान आदि योधाओं की कथायें लाभदायक होती हैं तिस प्रकार आत्मोन्नति के लिये साधु संतों के आदर्श चरित्र लाभ दायक होते हैं साधु पुरुषों का त्याग, वैराग तप, संयम, सत्य शील,

क्षमा, समता और विशुद्ध प्रेम अर्थात् सभी अनुकरणीय होते हैं-और यही गुण आत्मोन्नति के सहायक माने जाते हैं।

जैसे कौड़ी से भण्डार, बूंद २ से सरोवर, और दाने २ से खत्ते भर जाते हैं ऐसे ही एक २ गुण के प्रभाव से एक साधारण सा मनुष्य भी पूज्य पुरुष बन जाता है।

जैनों में आदर्श पुरुषों के जीवन चरित्रों की कोई कमी नहीं है-जहां उन चरित्रों द्वारा चरित्र नायकों के पवित्र जीवन रोशनी में लाये जाते हैं, वहां उनको पढ़ने, सुनने वालों का जीवन भी पवित्र बन जाता है-जैसे पारस पत्थर के छू जाने से लोहा जैसी धातु भी स्वर्ण बन जाती है तैसे ही आदर्श पुरुषों की जीवन घटनायें अपने प्रभाव से साधारण आत्माओं को महात्मा बना देती हैं।

आज जो "आदर्श जीवन" नाम की पुस्तक हमारे सम्मुख है वह भी एक आदर्श पुरुष के जीवन वृत्तान्त की सामग्री है-यह आदर्श पुरुष एक वयोवृद्ध जैन महात्मा हैं-जोकि पूर्ण तपस्वी, संसार त्यागी, महान संयमी, और कल्याण मार्ग के अनथक पथिक हैं-आपके बाल्य काल से लेकर शिक्षा, दीक्षा, धर्म प्रचार संयम पालन, आदि का सब वृत्तांत जो अब तक आपके जीवन काल में गुज़रा है वह विद्वान लेखक ने बड़े ही रोचक शब्दों में प्रगट किया है-

पुस्तक के प्रथम खंड में भगवान ऋषभदेव और श्री वीर प्रभु के शासन का संक्षिप्त परिचय देते हुये श्री सुधर्मा स्वामी;श्रीजम्बू स्वामी,आदि ६७ पूज्य पुरुषों की नामावलीका उल्लेख किया गया है-और फिर पूज्य मनोहरदासजी (जिनकी सम्प्रदायसे चरित्रनायक सम्बन्ध है)भागचन्द्रजी,सीतारामजी शिवरामदास जी नूणकरण जी, तुलसीरामजी और खयाली-

राम जी का परिचय देकर गुरू देव मंगल सेनजी का जीवन वृत्तांत लिखा है गुरुदेव मङ्गल सेन जी का जन्म सं० १६०२ में हुआ–सं० १६२१ में दीक्षित हुये और सं० १६७७ में आपका स्वर्ग वास हो गया, पूज्य मंगलसेन जी चरित्र नायक मुनि मोतीराम जी के गुरुदेव थे–मुनि मोतीराम जी का जन्म सं० १६२५ में और दीक्षा सं० १६४१ में हुई-जबकि आपकी आयु मात्र १६ वर्ष की थी–वर्तमान समय में आपकी आयु ६३ वर्ष की है और इस अवस्था में आपको श्री संघ की ओर से आचार्य पदवी से विभूषित किया जा रहा है–जिसका उत्सव अभी हाल फागुण कृष्णा ५ सं० १६८८ को महेन्द्रगढ़ में होने वाला है।

इस पुस्तक के लेखक मुनि अमर चन्द्र जी ने जोकि चरित्र नायक के प्रशिष्य और मुनि पृथ्वीचन्द्र जी के शिष्य हैं यह पुस्तक लिख कर जहां अपनी गुरुभक्ति का परिचय दिया है–वहां जैन संसार पर भी असीम कृपा की है इस पुस्तक के पाठ से जैन अजैन, सभी महानुभाव लाभ उठायंगे–ऐसी पूर्ण आशा है–अन्त में

श्रीमान् स्वर्गीय राजा बहादुर ला० सुखदेव सहाय जी के सुपुत्र दानवीर सेठ ज्वालाप्रसाद जी को कोटिशः धन्यवाद दिया जाता है कि जिन्होंने इस पुस्तक को अपने द्रव्य से छपा कर साधर्मी जनों को बिना मूल्य भेंट स्वरूप दी है उनका यह कार्य सर्वथा सराहनीय है।

| | |
|---|---|
| **(प्रेम भवन) देवबन्द यू० पी०** | **ज्योति प्रसाद जैन** |
| **मिती माघ शुक्ला २ सं० १६८८** | **सं० जैन प्रदीप** |

# अपनी–दोबात

प्रिय पाठक वृन्द!

यह पुस्तक जैसी है, वैसी आपके समक्ष है। आप देख सकेंगे कि मैं इस पुस्तक के लिखने में कहाँ तक सफल हुवा हूँ? काव्य कला के सौन्दर्य से तो यह पुस्तक बस नहीं के बरा बर ही है। हाँ, परन्तु अधम से अधम और पामर से पामर पुरुष भी जिन मंगलमय-भावों के बल से सत्पुरुष बने हैं-बनते हैं-बनेंगे, उन भावों के सौम्य-सौन्दर्य से यह तुच्छ पुस्तक अवश्य समलंकृत है। सत्पुरुषों के दिव्य भावमय जीवन चरित्र से बढ़कर, संसार में मानव जीवन को अनन्त आकाश तक ऊंचा उठाने वाला और कोई नहीं है। सत्पुरुषों का चरित्र सूर्य है, जो अन्त-ह्रदय में दुराचार के गाढान्धकार को छिन्न-भिन्न कर सदाचार का सुप्रकाश करदेता है। सत्पुरुषों के जीवन जरित्रों ने न मालूम कितनों को अपने लक्ष्य से भ्रष्ट होते-होते बचाया है। अधिक क्या, सत्पुरुषों का जीवन कथानक बिन्दु को सिन्धु बनाने वाला है।

अस्तु, यही सत्पुरुष जीवन–चरित्रमय यह पुस्तक है। इसमें पूर्ण त्यागी महान् आत्मा श्री मज्जैनाचार्य पूज्य मोतीराम जी महाराज का विमल जीवन चरित्र संक्षिप्ततासे अंकित है। यद्यपि समयाभाव के कारण पूर्ण तया जीवन कथानक नहीं लिखा जा सका है, फिर भी खास-खास बातें तो प्रायः आयही गई हैं। पूर्ण जीवन चरित्र तो बिना पूर्ण समय के नहीं लिखा जा सकता। जो भी हो जैसा तैसा टूटी फूटी भाषा में लिखा हुवा ही यह

चरित्र प्रेमी पाठकों को रुचिकर होगा। पाठक! इसे भक्ति भाव पूर्वक पढेंगे और पढ़कर अपने जीवन को उन्नति की ओर बढावेंगे।

जहाँ तक बनसका है पुस्तकीय कथा वस्तु के लिखने में बहुत साव धानी रक्खी गई है। फिर भी मर्यादा से अधिक शीघ्रता के कारण यदि कहीं भ्रमवश भूल होगई होतो अल्पज्ञ लेखक तदर्थ सदा क्षमा प्रार्थी है। हितैषी संशोधकों द्वारा सूचना मिलने पर यथा संभव द्वितीय संस्करण ठीक हो सकेगा।

अमर पद्य मुक्तावली में चरित्रनायक जी के माता पिता जीवित सम्बन्धी बात भूल से लिखी गई थी, अब वह इस पुस्तक में ठीक करदी गई है, पाठक! ध्यान रक्खें।

इस पुस्तक के लिखने में एक समया भावकी गड़-बड़ तो थी ही, दूसरी स्वास्थ्य के बिगड़ जाने की भी गड़-बड़ हो गई, अतः लेखन कार्य सुचारु रूप से नहीं चल सका। यदि मुझे मुनि श्री श्यामलाल जी के ज्येष्ठ शिष्य विद्याभिलाषी मुनि प्रेमचन्द्र जी ने व मेरे लघु गुरु भ्राता विद्याभिलाषी मुनि अमोलक-चन्द्र जी ने अन्य कार्यों से अवकाश आदिका शुभ सहयोग नहीं दिया होता तो मैं इस कार्य को इतना जल्दी ( सिर्फ़ दोही महिनों में ) पूर्ण करने में संभव है असफल रहता ? अतः इस मुनियुगल का मैं हृदय से आभारी हूँ। ऐसे सहयोगियों के सहयोग से ही शुभ कार्य सफल हुवा करते हैं।

"लेखक"

# विषय-सूचि ।

## भूल—सुधार

१ पृष्ठ ११९ के शीर्षक में जो "चतुर्मास-१३-१४-सं० १९४५-४६ सिघाणा कानोंड" छपा है उसके स्थान में-"चतुर्मास-१३-१४ सं०-१९-५३-५४ सिघाणा कानोंड" पढ़ें।

२ पृष्ठ १४८ के शीर्षक में जो "चतुर्मास-३८-३९ संवत् १९७८-७९ नारनौल" छपा है। उनके स्थान में "चतुर्मास-३८-३९-४० सं० १९७८—७९—८० नारनौल बड़ोत" पढ़ें।

# आदर्श-जीवन

## पूर्व-खण्डम्

"रोइअनाय पुत्त वयणे, अत्तसमे मन्निज्ज छप्पिकाए
पंचय फासे महव्वयाइं, पंचासव संवरे जे स भिक्खू"

श्रीशय्यंभवाचार्य-

जो भगवान महावीर के प्रवचनों पर अटल श्रद्धा रखता है-संसार के समस्त प्राणियों को अपने समान समझता है-पंचमहाव्रतों को पूर्ण-रूपेण पालन करता है-चञ्चल इन्द्रिय दलको अपने वश में रखता है, वही आदर्श-जीवन वाला सच्चा-संयमी है।

# गुर्वावलि।

## प्रकरण पहला

## भगवान ऋषभदेव
और
## भगवान महावीर

भगवान ऋषभ ही कर्म योग के जग में मूल प्रवर्तक हैं
क्या ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सब वर्णों के संस्थापक हैं
" एक ऋषभ भक्त "

जय जय महावीर प्रभो! जग को जगा कर आपने
संसार के हिंसा जनित भय को भगा कर आपने
इस लोक को सुर लोक सेभी परम पावन कर दिया
अज्ञान आकर विश्व को प्रकाश का सागर किया

" एक वीर भक्त "

पवित्र भारतीय सभ्यता में वंश को एक बहुत ऊँचापद प्रदान किया है। अतएव जिस किसी पवित्र आत्मा के जीवन चरित्र का वर्णन किया जाता है तो साथ ही उसके पवित्र वंश काभी अवश्य वर्णन किया जाता है। बिना वंशके परिचयके सम्पूर्ण जीवन चरित्र फीका सा मालूम पड़ता है।

जिस प्रकार भारत में वंश को ऊँचापद दिया है उसी प्रकार उस के भेद प्रभेदों को भी ऊँचापद दिया है अर्थात् वंश के भेद प्रभेदों की भारत में कोई गिनती नहीं है। परन्तु, मुख्य तया

शास्त्रकारोंनें वंश के दो भेद किये हैं एक सांसारीक दूसरा धार्मिक। सांसारिक वह वंश है जो पिता, पितामह के रूप में चलता है और धार्मिक वंश वह है जो गुरु, प्रगुरु के रूप में चलता है। अस्तु पाठको! आपके चरित्र नायक के जीवन में अद्वितीय चमत्कृति लाने वाला धार्मिक वंश है। अतः प्रथम संक्षिप्त रूप से धार्मिक वंश का ही वर्णन किया जाता है।

वाचकवृन्द! जैन धर्म एक अनादि धर्म है। इस की आदि का पता लगाना ऐसा ही है जैसा कि आत्मा की आदि का पता लगाना। आत्मा की आदि का पता लगे तो जैन धर्म की आदि का पता लगे। ( आत्मा का और जैन धर्म का एक अभिन्न घनिष्ट सम्बन्ध है जिसे अनुभवी ही समझते हैं )।

बड़े बड़े इतिहासकार इस की आदि का पता लगाने के लिये ज़ोश में आ आकर क़लम उठा चुके हैं किन्तु, इधर उधर भटक भटका कर अन्त में उन्होंनें "अरे यह तो एक आकाश है। इस का प्रारंभ कैसा!" लिख कर अपनी कोमल क़लम को इस व्यर्थ के प्रयास से विश्रान्ति देदी है। अस्तु वैसे तो इस जैन धर्म की कोई आदि नहीं हैं, किन्तु काल चक्र की अपेक्षा इस की एक मानने की आदि मानी जाती है। अत एव इसी काल चक्र की अपेक्षा से ही प्राचीन इतिहास के वर्णन के साथ साथ धार्मिक वंश का वर्णन किया जाता है। पाठक ध्यान से पढें और पवित्र पुरुषों के जीवन से पवित्र शिक्षाएँ लें।

प्रियसज्जनों! हमारे परम पूज्य शास्त्र कारोंने इस संसार को चक्र ( पहिये ) की उपमा दी है। जिस तरह रथ का चक्र क्रमशः ऊपर से नीचे की ओर तथा नीचे से ऊपर की ओर पलटा खाता रहता है उसी तरह यह संसार भी क्रमशः उन्नति से अवनति की

ओर तथा अवनति से उन्नति की ओर पलटा खाता रहता है। कभी संसार ने सम्यग् ज्ञान का समुज्वल सौम्य प्रकाश है तो कभी कुत्सित अज्ञानका घृणामय भीषण अन्धकार है। कभी न्याय और नीति का शान्तिमय शासन है तो कभी अन्याय और अनीति का अशान्तिमय दमन चक्र है। कभी सुख-शान्ति की मन चाहती सुधा वृष्टी है तो कभी भीषण दुख की प्रलयंकर वृष्टी है। अधिक क्या! संसार पतन के बाद उत्थान और उत्थान के बाद पतन के निश्चित चक्र पर चलरहा है।

प्रिये पाठको! संसार के इसी अटल नियम के अनुसार भारत में एक समय वहथा जब मनुष्यों में धार्मिक भावना नाम लेने कोभी न थी। सब पर अकर्मण्यता की छाया पड़ी हुयी थी। भोग विलाश ही सब का लक्ष्य-बिन्दु बना हुआ था। छोटे बड़े सब अपने अपने गंदे स्वार्थ की पूर्ति में लग कर बंधुता के सच्चे प्रेम से काली कोसों दूर होते जा रहे थे। किं बहुना, सुयोग्य शासक के अभाव के कारण अन्याय और अनीति अपने बहुत दिन से दुर्बल हुये शरीर को दिन प्रति दिन परिपुष्ट करती जा-रही थी। इसी समय भारत की दशा सुधारने के लिये, जन समुह को अज्ञान के अन्ध कूप से बाहिर निकालने के लिये, अकर्मण्यता के स्थान में कर्मण्यता का पाठ पढा ने के लिये, मनुष्यों के धार्मिकता शून्य हृदय हिमाचल में धार्मिकता का सुन्दर सुखद झरना बहा ने के लिये एक महान आत्माने श्री नाभिकुल कर को पितृ पद तथा श्री मरु देवी जी को मातृ पद प्रदान कर सुप्रसिद्ध कौशल देश की अयोध्या भूमि में श्री ऋषभ देव जी के नाम से जन्म लिया। जन्म लेने के बाद अपनी योग्य अवस्था में ऋषभ देव जी नें वे अद्वितीय कार्य किये जिन्हों ने

ऋषभ देव जी को भगवान् की महा पदवी प्रदान की।

भगवान् ऋषभ देव जी ने समय की संपूर्ण गति विधि-को देख कर वर्णाश्रम धर्म की स्थापना की। आपने समस्त जनता में शिक्षा का प्रचार करने के लिये सच्चरित्र और ज्ञान संपन्न सज्जनों को ब्राह्मण पद, तथा देश, जाति, और धर्म की रक्षा करने के लिये शूर वीर एवं तेजः संपन्न सज्जनों को क्षत्रिय पद तथा देश की आर्थिक परिस्थिति को ठीक रखने के लिये व्यापार कला कुशल सज्जनों को वैश्यपद तथा उपरि लिखित तीनों वर्णों की कार्य वाही को ठीक-ठीक संचालित रखने के लिये सेवा रहस्य मर्मज्ञ सज्जनों को शूद्र पद प्रदान किया। आपने बतला दिया कि, यह चारों वर्णों का सम्बन्ध परस्पर बंधुता का सम्बन्ध है। एक, दूसरे को कोई उँचा-नीचा न समझे। यदि जरा भी परस्पर उँच- नीच पन का भाव मन में आया ना, कि वर्णाश्रम धर्म का मलिया मेट हुआना।

आपके ही शासन काल में वृक्षों के नीचे रहने वाला मनुष्य संघ, सुन्दर भवनों का निवासी हुआ। आपके ही शासन काल में असि, मसि, कृषि, विद्या का प्रारंभ हुआ। आपके ही शासन काल में पवित्र गृहस्थ धर्म का सूत्र पात हुआ।

कि बहुना, पाठको! भगवान ऋषभदेवजी का विधि-विधान कर यहीं पर समाप्त न हुआ, आपने राज्यवैभव का परि-त्याग कर अकिंचन भिक्षुक की सुपदवी में अबोध जनता को नरसे नारायण बनने का अर्थात् ईश्वर पद प्राप्त करने का शुभ सन्देश दिया। जिस सन्देश पर चल कर भव्यात्माओं नें अपना आत्म कल्याण किया। यह सन्देश श्रावकधर्म और साधु धर्म का था। भगवान ऋषभदेवजी को ग्राम धर्म, नगर धर्म, तथा राष्ट्र

धर्म, के प्रचार में इतनी कठिनता का सामना न करना पड़ा, जितना की निवृति मार्ग के श्रावक तथा साधु धर्म के प्रचार में करना पड़ा। और तो और इस निवृति मार्ग के प्रारंभ केही चक्र में भगवान ऋषभदेवजी को एक वर्ष तक निराहार रहना पड़ा था जो एक मानवीय शक्ति की सीमा से बाहिर का काम है। अस्तु, आज समस्त भारतवासी मनुष्य भगवान ऋषभदेवजी के ऋणी हैं। यह ऋण वह ऋण है, जो चुकाया नहीं जा सकता। अतः प्रत्येक प्रभात में उनके गुणों का कीर्तन करना और उनके बताये हुये मार्ग पर चलने के लिये अटल प्रतिज्ञा करना ही हम भारतीयों का मुख्य कर्तव्य है। चाहे हम गृहस्थ हों, चाहे हम साधु हों, चाहे हम कोई हों।

सज्जनो! यह न समझें कि भगवान ऋषभदेव जी की महत्ता का वर्णन जैन इतिहास कार ही करते हैं अन्य नहीं, भारत की काया पलट करने वाले भगवान ऋषभ देव जी का गुण कीर्तन तो वैष्णव धर्म का एक मात्र मान्य ग्रन्थ श्रीमद्भागवत भी बड़े बड़े लंबे-चौड़े, सुन्दर विशेषणों से कर रहा है। जिसे देखना हो देखे, बड़े आनन्द के साथ देखे, भागवत के पंचमस्कन्ध के पृष्ठ दिखाने के लिये संकेत कर रहे हैं।

अस्तु, भारत के विकृत होते हुये शरीर को पुनः सुसङ्गठित एवं सुदृढ करके भगवान ऋषभदेव जी के मोक्ष धाम पधारने के बाद इसी प्रकार अपने अपने समय में अशुद्ध होते हुये सामाजिक एवं धार्मिक वायु मंडल को शुद्ध करते हुये २२ तीर्थंकर और हुये। जिनका इतिहास बहुत विस्तृत है। यदि उनकी जीवन सम्बन्धी बड़ी-बड़ी घटनाओं का ही वह भी बीच बीच में छोड़-छाड़ करके उल्लेख किया जाय तोभी इतना भार हो जाता है

जिस को यह मेरी नन्हीं सी पुस्तक नहीं उठा सकती। अतः पाठक! जरा संतोष करके आगे बढ़ें और चौबीस वें तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी के जमाने का हाल पढ़ें।

भगवान् महावीर से पहिले भारत पर जो अवस्था बीत रही थी वह इति हास ों से कुछ छुपी हुयी नहीं है। उस समय भारत में एक लाल खूनी झंडा फ़हरा रहाथा। प्राय छोटे बड़े,ज्ञानी अज्ञानी अमीर फकीर सब लाल झंडे कीही रक्षा में लगे हुये थे। अपने खून को सुरक्षित रखने के लिये दूसरों का खून बहाना एक मामूली काम समझा जाता था। गुणों से सम्बन्ध रखने वाले ऊंच नीच पनके भावों को आत्यभिमानियों ने धींगा धींगी से केवल जाति मत सत्तापर लेजा पटके थे। तेईस तीर्थंकरों से कीड़ी जैसे छोटे छोटे जीवों की भी रक्षा का उपदेश पाये हुये भव्य भारतीयों की संतानें, स्वार्थप्रिय नर पिशाचों के फंदे पड़कर क्रमशः अजबली, मेषबली, अश्वबली, महिषबली, गोबली, जैसे हत्या काण्ड करती करती हहह नरबलीपर आ डटी थी। कर्तावाद तथा भवीवाद् की उलझन में पड़कर जनता पुरुषार्थ वाद से कतैई पराङमुख होती जारही थी। जड़वादियों की धूर्ततायुक्त युक्तियों की चोटें खा खा कर आत्म-वाद का समस्त- अङ्ग जर्जर हो चुका था। किं बहुना, धर्म के वेष में अधर्म अपनी विजय दुन्दुभी बजा-ता हुआ छाती ताने फिर रहा था।

मेरे कहने का यह आशय नहीं है कि उस समय कोई धर्मात्मा मनुष्य था ही नहीं सबके सब अधर्मी ही थे। कहने का आशय केवल इतना ही है कि उस समय अधर्म का प्राबल्य था। यौंतो भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के शिष्यानुशिष्य बड़ी सावधानी

के साथ तन तोड़ परिश्रम करके धर्म का अस्तित्व रख रहे थे। परन्तु वह कुछ रखने में रखना नहीं था। क्यों कि उनकी शक्ति मन्द थी। और धर्म ध्वंसकों की शक्ति प्रचण्ड थी। प्रचण्ड शक्ति के सामने हमेशां प्रचण्डतर शक्ति की आवश्यकता रहती है। अतएव उस समय के समग्र धर्म रक्षक एक स्वर से एक ऐसी शक्तिका आवाहन कर रहेथे जो एक से एक भयंकर एवं प्रबलतर तूफानों के कारण डूबती हुई धर्म की नैया को बचावे। और विजयोल्लास में मचलते हुये धर्म ध्वंसकों को मुहतोड़ उत्तर देकर अड़वादी संसार को आत्मवाद पर विश्वास रखने वाले बनावें।

अस्तु, सज्जनो! यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी, का महावाक्य सफल हुवा और अच्छी तरह सफल हुआ। कुण्डलपुर पति महाराजा सिद्धार्थ की पट्टरानी सत्यवती त्रिशलादेवीजी के गर्भ से चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन समगूराष्ट्र मुकुटमणिमगध देश में भगवान् महावीर स्वामी का मङ्गलमय अवतार यानी जन्म हुआ।

भगवान् महावीर बाल्य काल से ही भारत के उद्धार करने की फिक्र में थे। प्रारम्भ से ही उनका मन तात्कालिक भोग विलास मय प्रवृत्ति मार्ग से बिल्कुल उदासीन था। वह चाहते थे कि जहाँ तक बने शीघ्रता के साथ भारत के भूतल से इस हृदय द्रावक अत्याचार को काला मुँह करके बिदा किया जाय। लेकिन माता पिता के प्रबल आग्रह से मजबूरन उनको विवाह सूत्र में बँधना पड़ा। एक राजकुमार और फिर वह बिना विवाह के रहे यह माता पिता को अपनी दृष्टि में उचित न जान पड़ा।

अस्तु एवं सम्यक् रूपसे गृहस्थ धर्म की नीति रीति पर चलते हुए, सामाजिक नीति रीति का वायुमण्डल ठीक करते

हुए भगवान महावीर स्वामी की अवस्था तीस वर्ष के समीप पहुँची। इसी बीच में माता पिता का भी स्वर्गवास हो चुका था। अब महावीर, महावीर बनने के लिए, भारत का सुधार करने के लिये, संसार में शान्तिस्थापित करने के लिये, मूक पशुओं के करुण - क्रन्दन को हर्ष – ध्वनि में परिवर्तित करने के लिये, धर्म की खोज में मन माने पथपर चलकर इधर उधर धक्के खाते हुये मनुष्यों को सद्धर्म का स्वरूप समझाने के लिये, जातिगत ऊँच नीच पन के भेदभावों का खण्डन कर गुणगत ऊंच नीचता के सिद्धान्त का मण्डन करने के लिये अदम्य उत्साह के साथ तैयार हुये।

पाठको! भगवान महावीर के हाथ में राज्य सत्ता थी। वे राज्य सत्ता के बल से अपने अभीष्ट कार्य को सफली भूत कर सकते थे, किसी कानून, कायदे के ज़रिये से बधते हुये अत्याचार का अस्तित्व खो सकते थे। लेकिन उनको यह नीति पसंद न हुई वे जानते थे कि राजा अपने शासन के बल से केवल मनुष्यों के शरीर पर ही कुछ थोड़ा बहुत विजय प्राप्त कर सकता है। किन्तु, मनुष्यों के अन्तरहृदय पर विजय प्राप्त नहीं करसकता। और जब तक अन्तरहृदय पर विजय प्राप्त नहीं किया जाय तब तक मिट्टी के पुतले पर विजय प्राप्त करने से क्या सिद्धि? कुछ भीनहीं। क्योंकि अच्छे बुरे तमाम कार्यों का पैदा करने वाला बाप अन्तरहृदय है नकि शरीर। शरीर में तो अन्तरहृदय की प्रेरणा से ही क्रियाएँ होती हैं स्वयं नहीं।

अस्तु, भगवान महावीर स्वामी ने लोगों के अन्तरहृदय पर विजय प्राप्त करने वाला मार्ग का अवलंबन किया और तद्-नुसार मंगसिर वदि दशमी के दिन राज्य वैभव को ठुकरा कर

स्वजन- सम्बन्धियों से नाता तोड़ कर पंच महाव्रतों की पूर्ण प्रतिज्ञा कर कर तपोवन की राहली। भगवान् महावीर तपोवन में भी अन्यतपस्वियों की तरह नहीं रहे। वहांपर भी उनका रहन सहन कुछ विलक्षणताको ही लिये हुये था। भगवान् महावीर, कभी सिंहों की दहाड़ से मुखरित होने वाले भयावह निर्जन वनों में ध्यान लगाते तो कभी ऊँचे ऊँचे पहाड़ों की ऊंची ऊंची गगन-चुम्बी चोटियों पर ध्यान लगाते। कभी जाड़े की मोसम में नंगे बदन ठंडी हवा के झोंके पर झोंके लेते हुए नदी के काँठे ध्यान लगाते तो कभी कड़ कड़ाती हुयी जेठ की गर्मी में दुपहरी के वख्त अग्नि के समान लाल धँधकती हुयी शिलापर ध्यान लगाते। कि बहुना, इसी प्रकार बारहवर्ष तक एक से एक कठिन तपक्रियाएँ करते रहे, बेले से लेकर छः छः महिने तक के लंबे उपवास करते रहे। एवं संगम जैसे देवों के लगातार छः छः महिने तक हृदय कंपी उपसर्ग सहन करते रहे। पर कभी भी अपने हृदय में ग्लानि को स्थान नहीं दिया, वल्कि ज्यों ज्यों आपत्तियाँ पड़ती गई त्यों त्यों मन्दराचल के समान धीर-महाधीर बनते चले गये।

पाठको! इसी उपसर्ग के प्रसंग की एक समय की बात है कि स्वयंइन्द्र हाथमें बज्र लेकर भगवानकी सहायता करने के लिये-उपसर्ग करने वाले को दंडित करने के लिये आया। भक्ति की भावना ने इन्द्र के हृदय को चंचल कर दिया। वह न समझ सकाकि मैं किस की सहायता करने के लिये भागा आरहा हूँ। अस्तु, भगवान के पास पहुंचते ही हुआ क्या? भगवान महावीर ने इन्द्र को उस देवेन्द्र को वह मधुर फटकार बताई कि जिसे पढते ही बनता है। भगवान महावीर ने कहा — अयि भक्त इन्द्र! तू कहाँ आया है? क्या करने आया है? क्या समझ कर आया है?

देव समूह को शिक्षा देने वाली तेरी बुद्धि आज कैसे विकल हो रही है ? भला, बताओ सही तूने मुझे क्या समझा है ? क्या मैं कायर हूँ ? क्या मैं असमर्थ हूँ ! क्या मैं दुःखों से घबरा कर अपने लक्ष्य-बिन्दु से मुँह मोड़ने वाला हूँ ! जो तू वज्र लेकर आव देखा न ताव झट मेरी सहायता करने को दौड़ पड़ा । समझ, सहायता कमज़ोर की ही की जाती है, बलवान की नहीं । मैं, मानता हूँ कि, तू मेरी भक्ति में सुध-बुध भूलकर ऐसा कर रहा है । लेकिन, प्रिय ! यह भक्ति मुझे पसंद नहीं । यह भक्ति तो मेरे आत्म-विकास में पूरी-पूरी बाधक है । ऐसी तुम जैसों की सहायता भक्ति से आजतक न तो किसी ने जिनपद पाया है, न अब कोई पा सकता है । न आगे कोई पा सकेगा । "जिन" होने वाला व्यक्ति किसी की सहानुभूति की अपेक्षा नहीं रखता । वह हमेशां अपने भरोसे पर ही रहता है । यदि तुझे सहायता करने की सच-मुच ही लगन लगी है तो जा उन दीन-हीन जीवों की सहायता कर जो सहायक की अपेक्षा रखते हैं "।

अहा भगवान महावीर ! तुम्हारी सी धीरता, तुम्हारी सी वीरता तुम्हारे में ही थी । तुम्हारे आदर्श पर चल कर न मालूम कितने महानुभाव सदा के लिये अजर-अमर पद प्राप्त कर चुके हैं । अस्तु, बारहवर्ष की कठिन तपस्या के बाद बैशाख वदि, दशमी के दिन केवल ज्ञान प्राप्त कर भगवान महावीर भगवान बने, सकल लोका-लोक के ज्ञाता बने, अनंत शक्ति संपन्न बने । केवल-ज्ञानी बनने के बाद जन समूहमें भगवान महावीर का पहला उपदेश पावा पुर में हुआ । जिससे पहले ही बार में गौतम, सुधर्मा जैसे दिग्गज ब्राह्मण विद्वान हिंसामय यज्ञ का परित्याग कर भगवान

महावीर के प्रधान शिष्य बने। ज्योंही पावा पुर के अग आनीते विद्वान् भगवान के चरण किंकरबने त्योंही समग्र भारत के जन समूह की दृष्टि अपने अपने भावों को लेले कर भगवान महावीर स्वामी पर पड़ी।

भगवान महावीर नें एक गाम से दूसरे गाम से तीसरे गाम यों गाम दर गाम फिर फिर कर जनता को एक यही उपदेश दिया कि:—

" सव्वतो पमत्तस्स भयं सव्वतो अपमत्तस्सणत्थि भयं "

प्रमत्त (प्रमादि) मनुष्य को हमेशाँ हर तरफ से भय रहता है। परन्तु, अप्रमत्त (अप्रमादी) मनुष्य को किसी भी काल में किसी प्रकार भय नही है (प्रमादः- आलस्य, स्वाभिमान का विस्मरण, स्वशक्तिका विस्मरण)। भगवान महावीर का उपदेश क्या था बस प्राणक्रिया शून्य मृत-कलेवरों में एक जीवन-शक्ति का संचार होगया। शान्ति व सुख की मधुर दुंदुभि मगध से बजनी शुरु हुई और अंग,-बंग, कलिंग, मरुधर, महाराष्ट्र, काशी कौशल आदि देशों में बजती हुयी चली गई। क्या पशु संसार में क्या मनुष्य संसार में उस समय आनंद का एक अनोखा ही दृश्य था, जिस को यह जड़ लेखनी इस जड़ कागज पर अंकित नहीं कर कसती।

अस्तु, इस प्रकार भारत में अहिंसा मय जैन धर्म की विजय दुन्दुभि बजाकर, संसार को सत्पथ दिखाकर, जड़वाद का मस्तक नीचे झुका कर, कार्तिकी अमावस्या के दिन इस नश्वर शरीर का त्याग कर-भगवान महावीर स्वामी नें निर्वाण पद-सिद्ध पद प्राप्त किया। इसी भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण दिन से भारत में दीपमालिका मनाई जाने लगी। दीपमालिका

के जन्म दाता भगवान महावीर के श्रावक अट्ठारह राजा थे। जो भगवान के निर्वाण के दिन पावा पुर में विद्यमान थे।

सज्जनों ! भगवान महावीर का जीवन- कथानक बहुत विस्तृत है। इसका सांगोपाङ्ग वर्णन करने के लिये एक स्वतंत्र महाकाय ग्रन्थ की ही आवश्यकता है। इस पुस्तिका में तो योंही चलते हुये शब्दों में कुछ संक्षिप्तसा- संचिप्तसा क्या- अत्यन्त संक्षिप्तसा कथन किया है। अस्तु, अब इस प्रकरण को यहीं समाप्त करते हैं और एक भक्ति की सुगन्ध से सुगन्धित पद्य को स्वस्मृति की विशुद्धि के लिये स्मरण करते हैं।

पन्नगेच सुरेन्द्रेच, कौशिके पाद संस्पृशि
निर्विशेष मनस्काय, श्री वीर स्वामि ने नमः

## सुधा—धारा

१ सम्यग् ज्ञान और सम्यक् क्रिया का अमर युगलही अक्षय मोक्ष-सुख देने वाला है।

२ धर्म एक बृक्ष है। इसकी जड़ नम्रता है। जड़ को मजबूत बनाए रक्खो वरना बृक्ष को गिरते देर नहीं लगेगी।

३ जितेंद्रिय है। जो सत्य का पुजारी है। बस, वही महा पुरुष है। वही पूज्य है।

४ मनुष्यत्व उसी मनुष्य में है जो दूसरे के हृदय को ठेस पहुँचाने वाले दुर्वचन नहीं बोलता है।

५ असंविभागी को अर्थात् केवल अपनी ही पेट पूर्ति करने वाले को मोक्ष नहीं मिल सकती।

" भगवान–महावीर "

## प्रकरण दूसरा ।

# प्रतापी-पूर्वज

प्रिय सज्जनों! जगद्गुरु, अन्तिम-तीर्थंकर, भगवान् महावीर स्वामी को भक्ति-भाव पूर्वक नमस्कार कर के अब आप सज्जनों को भगवान महावीर के बाद के इतिहास का कुछ इने-गिने शब्दों में संक्षिप्त सा दिग्दर्शन कराया जाता है:-

(२) **श्री सुधर्म-स्वामी**—भगवान् महावीर के गौतम सुधर्म आदि ग्यारह प्रधान शिष्य थे जो ग्यारह गणधर के नाम से जैन-अजैन जगत में जाने जाते हैं। जैन धर्म में गणधर पद एक महान् पद माना जाता है। अतः हर किसी मुनि महोदय को यह पद नहीं मिल सकता। इस पद के लिये एक खास शक्ति की आवश्यकता रहती है जो विरले ही मुनिवरों में मिलती है। यही कारण है कि भगवान् के चौदह हजार शिष्योंमें से गणधर पद धारक केवल येही ग्यारह महामुनि बने-अन्य नहीं। अस्तु, जब भगवान् महावीर स्वामी का निर्वाण हो चुका तब संघ का सुचारु रूपसे संचालन करने वाले संघपति आचार्य के लिये विचार हुआ। विचार करने वालों में साधु, साधवी, श्रावक, श्राविका सभी शामिल

थे। श्री संघ के निर्णयात्मक विचार के बाद गणधर श्रीसुधर्मा स्वामी संघपति आचार्य बनाए गए।

सुधर्मा स्वामी मगध, देश के कोलक ग्राम के विख्यात ब्राह्मण बंश में पैदा हुए थे। इनके पिता का शुभ नाम धवल और माता का शुभ नाम भद्रा था। इनके पिता मगध देश में माने हुए विद्वान् थे। सर्व साधारण में उनकी पूरी-पूरी प्रतिष्ठा थी। मगध में उनका वचन विना किसी ननु- नचके माना जाता था। हमारे पूज्य सुधर्मा स्वामी ने भी "बेल गैल-फल" वाली लोकोक्ति को ठीक रूप से चरितार्थ किया। पिता के गुण पुत्रमें भी आये। किन्तु, नवीन रूप से परिष्कृत होकर आये। अस्तु – सुधर्मा स्वामी का वाल्यकाल विद्याध्ययन करने में बीता। युवावस्था में वे एक प्रखर विद्वानोंकी गणना में गिने जाने लगे।

उनके पाण्डित्य की धाक मगध में ही नहीं अन्य देशों में भी मचगई। अपनी ब्राह्मण संप्रदाय के धार्मिक-कार्यों में वे दूर–दूर तक बुलाए जाने लगे। येही नहीं, शास्त्रार्थ में भी उनकी प्रतिभा-बुद्धि विलक्षणता को ही लिये हुई थी। उनका नाम सुनतेही प्रतिपक्षियों के छक्के–छूट जाया करते थे। अस्तु, जब पावापुर में सोमल ब्राह्मण नें यज्ञ का विशाल आयोजन किया और इसके लिये दूर–दूर से इन्द्र भूति, अग्नि भूति आदि-आदि दिग्गज विद्वानों का समूह इकट्ठा हुवा तब सुधर्मा जी भी उस विद्वन्मण्डल में साग्रह सम्मिलित किये गये थे। इसी बीच में भगवान महावीर स्वामी पावापुर पधारे। और इन्द्रभूति ( गौतम ) आदि विद्वानों के साथ पूज्य सुधर्मा जी भी भगवान महावीर की

सर्वज्ञता के प्रभाव से प्रभावित होकर शिष्य रूप में भगवान महावीर के चरणों के दास बन गये। दीक्षित होने के बाद सुधर्मा स्वामी जीने जैन धर्म के प्रचार में भगवान महावीर स्वामी का हाथ बँटाया। इन्हों ने जगह-जगह भ्रमण करके अहिंसामय जैन धर्म की जय भेरी बजाई। भगवान महावीर स्वामी के जीवन में भी सुधर्माजी के साथ पांचसो साधुओं का संघ शिक्षा पाने के लिये रहता था। अर्थात् सुधर्मा जी पांचसो साधुओं को वाचना दिया करते थे। पूज्य सुधर्मा जी नें संघपति बनकर बड़ी योग्यता के साथ संघका संचालन किया एवं मधुर उपदेश देकर अनेक भव्य-जीवों को आत्म कल्याण का मार्ग बताया। सारांश यह है कि ये महा पुरुष ५० वर्ष गृहस्थ में रहे, ३० वर्ष भगवान की सेवामें रहे, १२ वर्ष आचार्य पद पर रहे और फिर सर्वज्ञ हो ८ वर्ष के बाद अजर, अमर, मोक्षधाम में विराज गये।

(२) **श्री जम्बू-स्वामी**—सुधर्मा स्वामीजी के बाद जंबू-स्वामी जी आचार्य के पाट पर विराजे। जम्बू स्वामी मगध की राजधानी राजगृही के रहनेवाले थे। इनके पिताका नाम ऋषभदत्त और माता का नाम धारणी था। ऋषभदत्तजी भारत के प्रसिद्ध व्यापारियों में से एक थे। घरमें संपत्त का कुछ वार पार नहीं था। उस समय ये धन-कुबेर के नाम से पहचाने जाते थे। महाराजा मगधाधिपति, अजात शत्रु के दरबार में इनका विशेष संमान था। पिता श्री के जंबू कुमार एकही पुत्र थे। इकलोते पुत्र के प्रति माता

पिताओं का कितना प्रेम होता है इस के लिये किसी युक्ति-प्रमाण की ज़रूरत नहीं। अतः जम्बू कुमार का लालन-पालन ऐसे आनन्द के साथ हुआ जिसको यह जड़ लेखनी लिख नहीं सकती। अस्तु, बाल्य-काल में जम्बू कुमार का विद्याध्ययन एक सुयोग्य शिक्षक के शासन में हुआ। विद्याध्ययन के बाद विवाह की तैयारियां प्रारंभ हुई। बड़े-बड़े आठ इभ सेठों ने अपनी-अपनी आठ लड़कियों की बड़े चाव के साथ सगाई की। आस-पास के शहरों में इस विवाह की धूम मचगई। जनता के हृदय पर इस विवाह का एक अज़ीब ही दर्शनीय चित्र चित्रित होने लगा।

अस्तु, इसी प्रसंग में सुधर्मा स्वामी जी राज गृही पधारे। जम्बू कुमार भी धर्मोपदेश सुनने वालों में शरीक हुए। उपदेश सुनने के बाद जम्बू कुमार बदल गये। अब वे कुमार रहना नहीं चाहते थे। अब उनके हृदय में स्वामी बनने की अभिलाषा चक्कर मारने लगी। अन्ततोगत्वा-जम्बू कुमारने यह अपनी इच्छा माता-पिता के सामने प्रकट की। प्रगट करते ही माता-पिताओं की जो अवस्था हुई, उसे पुत्र प्रेमी माता पिता के कोमल हृदय ही जान सकते हैं, ग़ैर नहीं। अस्तु, माता-पिता के सास-ससुर के एवं स्त्रियों के आग्रह से जम्बू कुमार कुछ मन में विचार कर विवश विवाह सूत्र में बंधे। ९९ क्रोड़ सुवर्ण मुद्राएँ दायजे में मिली। जनता ने समझा अब जंबू कुमार के सिर पर से सुधर्माजी का वैराग्य रूप जादू उतर गया है। अब जंबू कुमार कमल कोमलाङ्गी रूप-

वती नई नवेली ललनाओं के जाल में फँसगया है। लेकिन, जंबू कुमार वैसे न थे जैसे जनता ने समझे। उनके हृदय में वही ध्रुव धारणा थी-वही अटल-विचारणा थी। उनका मन मधुकर तो सुधर्मा जी के चरण कमलों की सेवा सुगन्ध का लालची हो चुका था। भला अब वह कैसे इन गन्ध हीन सांसारिक भोग,बेलाश रूप टेसू के फूलों में ललचाता। निदान, जंबूकुमार अपने विचार में कामयाब हुए। समस्त धन सम्पत्ति गरीब भारतीयों को प्रदान कर– माता पिता सास- ससुर एवं आठों स्त्रियों के साथ पूज्य सुधर्माजी के शिष्य बने। प्रभवजी ने भी ५०० चोरों के साथ जंबू स्वामी के प्रतिबोध-से साथ ही दीक्षा लीथी अस्तु, सज्जनों! जंबू स्वामी जी ने साधु पद प्राप्त करके जो कार्य किया वह जैन जगत से कुछ छुपाहुआ नहीं है। आज के जैनी जिन शास्त्रों के बल पर छाती ताने विद्वान् संसार से मोर्चा लेरहे हैं वे शास्त्र जंबू स्वामी के परम परिश्रम के ही फल हैं। यदि जंबू स्वामी भगवान महावीर की वाणी पर लक्ष्य नहीं देते तो आज महावीर की वाणी संसार में कहीं ढूंढी हुई भी नहीं मिलती। महामुनि जंबू स्वामिन्! आपके विषय में अधिक क्या कहें? आपका नाम हम जैनियों के हृदय पट पर वज्र मुद्रा से मुद्रित है। आपकी जोड़ के बस आपही थे। चिरकाल हो चुका- भारत माता अनेकों लाल पैदा कर चुकी किन्तु, भारत माता से आज तक आपकी जोड़का कोई साधु पैदा न होसका। अस्तु, जंबू स्वामी नें भी सुधर्मा स्वामी के मोक्षा-रोहण के बाद संघका यथोचित रूप से संरक्षण किया और शुक्ल ध्यान द्वारा विमल केवल ज्ञान प्राप्त करके निर्वाण पद-

प्राप्त किया।

(४) **प्रभवस्वामी**—आप विन्ध्य पर्वत के पास जयपुर नगर के राजा विन्ध्य के बेटे थे। पिता से अनबन होजाने के कारण आप पाँचसो वीरों को लेकर राज्य से निकल पड़े और खुल्लम खुल्ला बग़ावत करने लगे। आप बड़े भीषण पहाड़ों की कंदराओं में रहते और बड़े-बड़े धनिकों के यहाँ डाके डालते। एक कथा लेखक के अनुसार आपका मंतव्य था कि "धनिकों के यहां व्यर्थ में रुँधे हुए-द्रव्य को लूटना और उसे भूखे गरीबों को दे डालना"। कुछ ही दिनों में आपकी धाक मच गई। बड़े-बड़े राजा महाराजा आप से पत्ते की तरह थर-थर काँप ने लगे। कई साहसी राजा ओं की विशाल सेना के साथ आपका घोर घमासान युद्ध हुवा, आख़िर आपकी पाँच सो वीरों की छोटी सी टुकड़ी ही आपकी तलवार के बल से विजय शालिनी हुयी। अस्तु, राजा महाराजाओं की शक्ति के आगे न हार ने वाले आप एक त्यागी--एक बाल त्यागी के सामने हार गये। जिस समय जंबू कुमार विवाह करके आये और ९९ क्रोड़ का दायजा मिला उस समय यह दायजा की गूँज आपके कानों में भी पहुँची। आप इस समय राज गृही के पहाड़ोंमें रहते थे। आपने मगधाधिपति अजात शत्रु का नाक में दम कर रक्खा था। हथियारों से कड़ा-तुड़ होकर पाँच सो वीरों के साथ आपने रात्रि के समय राज गृही में प्रवेश किया। महल में पहुँचने पर जंबू कुमार जी के वैराग्य भरे रंग ढंग को देखकर आपका

हृदय पलट गया। जंबू कुमार के प्रवचनों को सुनकर आपने अपनी हज़ारों मनुष्यों के रक्त से रंजित तलवार को फेंकदी और प्रातः होते ही अपने पाँचसो वीरों के साथ जंबू कुमार जी के संग ही मुनि वृति धारण करली। जिस समय आपने दीक्षाली उस समय आपकी अवस्था ३० वर्ष के करीब थी। वीर से ७५ वें वर्ष में आपने अपना १०५ वर्ष का आयु पूर्ण किया। आपने जैन धर्म की अच्छी उन्नति की।

(५) **शय्यंभव स्वामी**—आप राज गृही के रहने वाले वात्स्यायन गोत्री ब्राह्मण थे। आपनें २८ वर्ष की अवस्था में दीक्षा धारण की थी। आपका रचा हुआ दशवैकालिक सूत्र आज जैन साधु ओं का प्रथम पाठय ग्रन्थ है। साधु आचार के विषय में यह सूत्र मुख्य सूत्र माना जाता है। सत्यसुर्य को चमकाकर आपनें ६२ वर्ष की उम्र वीर संवत् ९८ वे में स्वर्ग यात्रा की।

(६) **यशोभद्र स्वामी**-आप एक दिग्गज विद्वान् थे। २२ वर्षकी अवस्था में आपनें मुनि दीक्षा ली। ८६ वर्ष की अवस्था में विक्रम से ३२२ वर्ष पूर्व वीर संवत् १४८ में स्वर्गवासी बने।

(७) **संभूति विजय** आपनें ४२ वर्ष की अवस्थामें मुनि दीक्षा ली। ९० वर्ष की उम्र में ( वीर संवत् १५६ विक्रम

से २१४ में ) आपने स्वर्ग यात्रा की। आप अपने समय के एक योग्य आचार्य थे।

(८) भद्रबाहु स्वामी—आप जाति के प्राचीन गोत्री ब्राह्मणथे। अपने समयके दिग्गज विद्वान्थे। आपके एक और भाई थे जिनका नाम वराहमिहरथा। वराह संहिता इनकी ही बनाई हुई है। दोनों भाइयों नें अपने पाण्डित्य के गर्व में आकर दिग्विजय करनी प्रारंभ की। सब देशों के पंडितों को एक एक करके जीतने चले गये। आखिर महामुनि सम्भूति विजयजी की दी हुई गाथा का अर्थ न लगा सकने-के कारण दोनों भाई संभूति विजयजी के शिष्य हो गये। दीक्षा के समय आपकी अवस्था ४६ वर्ष की थी। आपका वराहमिहर भाई संयम की कठिनाइयों से घबरा गया और आपसे आचार्य पद का झूठा झगड़ा करके संयम से भ्रष्ट हो गया। आप जैन शास्त्रों के प्रखर पण्डित थे। आपके इस अप्रतिम पाण्डित्य का परिचय आज भी गिरी पड़ी अवस्था में पड़ी हुई अपने जीवन- दिन यापन करती हुई आपकी बनाई हुई निर्युक्तियाँ दे रही हैं। मौर्य सम्राट-चन्द्रगुप्त को जैन धर्म की गृहस्थ दीक्षा देने वाले आप ही थे। मैसूर राज्य में "श्रवण बेल गुल" के चन्द्रगिरि पर्वत के शिला लेख यह भी सिद्धकरते हैं कि-मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त नें अन्तिम समय में आप के पास मुनि दीक्षा भी धारण की। आपका श्रुत ज्ञान निर्मल था। आप आखिरी चौदह पूर्व धारी थे। पाठक आश्चर्य करेंगे कि-आज से कोई २३००

वर्ष पहिले सम्राट् चन्द्रगुप्त के सामने आपने भविष्य वाणी की थी जो आज इतने समय पर बिना किसी न्यूना धिकता के ज्यों-की-त्यों होरही है। इतना लंबा भविष्य का ज्ञान? आज बड़े-बड़े भविष्य वादी चक्कर खाते हैं। परन्तु जैनी-दृष्टि से यह कुछ अधिक आश्चर्य नहीं ठहरता। जिन की आत्मिक-शक्ति का विकाश होजाता है उन के सामने ये बातें कुछ भी गिनती में नहीं हैं। जिन पाठकों को इस भविष्य वाणी के देख ने की इच्छा हो वे व्यवहार सूत्र की चूलि का देखें। अस्तु, मगध, अंग, बंग, गुजरात, मालवा आदि देशों में अहिंसा धर्म की शिक्षा को सुव्यवस्थित रूप से प्रचारित करने वाले आपका स्वर्ग वास विक्रम से ३०० वर्ष पूर्व वीर संवत् १७० में हुवा। मैसूर राज्य में चन्द्र गिरि-पर्वत पर एक गुफा है जो भद्रबाहु जी के नाम से बोली जाति है। कहते हैं, आपका समाधिमरण वहीं पर हुआ।

भद्रबाहु स्वामी जी के पाट पर अनुक्रम से ये आचार्य हुए-(९) स्थूलभद्रस्वामी (१०) आर्य महा गिरि स्वामी (११) सुहस्ति सूरि स्वामी (१२) सुस्थिल सूरि स्वामी (१३) इन्द्रदिन्न स्वामी (१४) आर्य दिन्न स्वामी (१५) सिंह गिरि स्वामी (१६) वयर स्वामी (१७) बज्र सेन स्वामी (१८) आर्य रोह स्वामी (१९) पुष्य गिरि सूरि स्वामी (२०) फल्गुमित्र सूरि स्वामी (२१) श्रीधरगिरि स्वामी (२२) शिवभूति स्वामी (२३) आर्यभद्र स्वामी (२४) आर्यनक्षत्र सूरि स्वामी (२५) नागेन्द्र स्वामी (२६) उपर गणि स्वामी (२७) देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण जी-आपने वीर सम्वत् ९८० में वल्लभी पुर नगर में जैन संसार के

समस्त दिग्गज विद्वान मुनियों की सभा करके जैन सूत्रों को लिपिबद्ध किया। इस के लिये जैन संसार आप का ऋणी है। (२८) चन्द्र सूरि (२९) समन्तभद्र सूरि (३०) धर्मघोष सूरि (३१) जयदेव सूरि (३२ विक्रम सूरि (३३) देवानन्द सूरि (३४) विद्याधर सूरि (३५) नरसिंह सूरि (३६) समुद्र सूरि (३७) परमानन्द सूरि (३८) विबुध सूरि (३९) जयानन्द सूरि (४०) उचित सूरि (४१) प्रौढ़ स्वामी (४२) विमलचन्द्र स्वामी (४३) नागदत्त स्वामी-आप विक्रम संवत १२८५ वैशाख सुदि तृतीया के दिन युग प्रधान आचार्य की पदवी से सुशोभित हुए। कहा जाता है आपनें सूर राजा को जैन धर्म का प्रतिबोध दिया जिस से सुराणा ओसवाल हुए(४४) धर्म सूरि (४५) रत्नसिंह सूरि (४६)देवेन्द्र सूरि (४७) रत्नप्रभ सूरि (४८) अमर प्रभु सूरि (४९) ज्ञानचन्द्र सूरि (५०) मुनि शेखर सूरि (५१) सागरचन्द्र सूरि (५२) मलय चन्द्र सूरि (५३) विजयचन्द्र सूरि (५४) यशवन्त सूरि (५५) कल्याण सूरि (५६) शिवचन्द्र सूरि (५७) हीरागर स्वामी (५८) रूपचन्द्र स्वामी—आपने ९ लाख द्रव्य की सम्पत्ति छोड़कर १८ वर्ष की अवस्था में दीक्षा ली; कहा जाता है—महीम शहर में पूर्णभद्र देवता आपका भक्त हुवा। आपनें अपने सदुपदेश से १८०००० घरों को भगवान महावीर की वाणी का भक्त बनाया। (५९) देवागर जी स्वामी (६०) वयरागर जी स्वामी (६१) वस्तुपाल जी स्वामी (६२) कल्याणदासजी स्वामी (६३) भैरवजी स्वामी (६४) नेमिचन्द्र जी स्वामी (६५) आसकरण जी स्वामी (६६) वर्द्धमानजी स्वामी (६७) सदारंगजी स्वामी।

## प्रकरण तीसरा

# पूज्य मनोहरदासजी

भगवान महावीर से ६८ वें पाट पर पूज्य मनोहरदासजी हुए। इतिहासज्ञोंकी दृष्टि में आपका समय विक्रम की १७ वीं शताब्दी माना जाता है। आपही से चरित्र नायक का वंश आपके नाम से विख्यात हुआ। आप मारवाड़ के प्रसिद्ध शहर नागोर के रहने वाले थे। आपका जन्म ओसवाल वंशके सुराना गोत्र में हुआ था। आप अपने समय के एक धनी-मानी गृहस्थ थे। जिस प्रकार आप पर लक्ष्मी की प्रसन्नता थी उसी प्रकार आप पर सरस्वती देवी की भी पूर्ण कृपा थी। आपका ज्ञान सांसारिक विषयों में ही सीमित था यह बात न थी। आप धार्मिक- विषयों में भी खासी जान कारी रखते थे। भगवान महावीर के प्रवचनों पर आपकी पूर्ण श्रद्धा थी। यह श्रद्धा आज कल की अंध श्रद्धा जैसी न थी। यह श्रद्धा बहुत कुछ ऊहा--पोह के बाद - धार्मिक-पुरुषों की सतत सत्संगति के बाद हृदय गत हुई थी। आप केवल श्रद्धावादी ही नहीं थे। आप श्रद्धा के अनुसार प्ररूपणा एवं स्पर्शना के भी कट्टर पक्ष पाती थे। आप जब तक गृहस्थ में रहे तबतक गृहस्थ धर्म के व्रतों को यथोचित रूप से पालन करते रहे। हर्ष है कि, आपका हृदय केवल गृहस्थ धर्म में ही संतुष्ट होकर न बैठा। वह साधु वृत्ति के लिये भी चंचल हो उठा। बस आप साधु बनने के लिये

सद्गुरु की खोज में रहने लगे। "बिना सद्गुरु के साधु में सत्साधुता नहीं आसकती" यह आपकी ध्रुव धारणा थी। आपका समय वह समय था जो नाम धारी यतियों का समय गिना जाता था। सारे मारवाड़, मेवाड़, कच्छ, काठियावाड़ आदि प्रान्तों में नाम धारी यतियों की ही दुन्दुभी बज रही थी। जगह जगह इनके अड्डे लगे हुए थे। शास्त्रों के तोड़ मरोड़ कर, झूठे हवाले देकर ये लोग अपनी वैयक्तिक कमजोरियों को छुपा रहे थे। उपर के वक्तव्य का यह आशय नहीं है कि उस समय सच्चे साधु थे ही नहीं। जो थे वे सब के सब साधु पद भ्रष्ट ही थे। क्यों न थे? सच्चे साधु उस समय में भी थे। लेकिन वे थे इने गिने ही। शिथिलाचारी साधुओं के कारण उन्हें बहुत कुछ कष्ट उठाने पड़ते थे फिरभी वे ज्यों त्यों अपने प्रणपर — भगवान महावीर के प्रवचन पर – दृढ थे।

सज्जनों! मनोहर दास जी उन्हीं पंच महा व्रती साधु ओं के पास दीक्षित होना चाहते थे। शिथिला चारी साधु ओं से तो इन्हें पहले से ही घृणा थी। शिथिला चारियों के आचार-बिचार इन्हें पसंद न थे।

अस्तु, मनोहर दास जी की आशा सफल हुई। ये मुनि श्री सदा रंग जी के शिष्य बने। दीक्षा लेने के बाद आपने जैन सूत्रों का दृढता के साथ अध्ययन किया। गुरुवर्य ने भी इन्हें योग्य जान कर अपनी तरफ से विद्या देने में कुछ कमी न रक्खी। कुछ ही समय में आप पाखण्ड के हृदय को थर थराने वाले प्रतिभाशाली पण्डित बन गये। अब आप के पाण्डित्य में और किसी प्रकार की कमी न रही। हाँ, कमी रही तो सिर्फ एक पाण्डित्य से काम लेने की। बस गुर्वाज्ञा प्राप्त होतेही

आपने प्रचार का काम अपने हाथ में लिया। अब आपका हृदय अपने प्रमाद वश भूले भाइयों को समझाने के लिये आतुर हो गया। आप सुमधुर भाषा में भगवान महावीर के प्रवचनों की विशद व्याख्या करके जनता को उठाने लगे— शिथिला चार संहारक शास्त्र शंख बजा-बजा कर शिथिला चारियों के शिथिला चारको दूर करने लगे। इस प्रचार कार्य में आपको बहुत कष्ट उठाने पड़े। पर आपने कष्टों की कोई परवा न की। आप बराबर अपने काम में लगे रहे, और आगे-आगे बढते रहे, अन्ततः क्या था? सफलता हस्त गत हुई, शिथिला चार के काले बादलों की घन घटा छिन्न- भिन्न हुई, सत्य साधुताकी शक्ति बलवती हुई। आपके हृदय स्पर्शी व्याख्यानों को सुनकर शिथिला चारी खुदही शिथिलाचार से घृणा करने लगे तथा—

"गृहीतलिङ्गस्य च चेद् धनाशा, गृहीतलिङ्गो विषयाभिलाषी।
गृहीतलिङ्गो रस-लोलुपश्चेद् विडम्बनं नास्ति ततोऽधिकं हि" ॥

इसश्लोक के भावों को हृदय गत करके सदाचारी साधुओं की सेवा में आकर सदाचारी बनने लगे।

अस्तु, इसी प्रचार में मनोहरदास जी महाराज के ४५ शिष्य हुए जो एक-से-एक धुरंधर विद्वान् थे। इन्होंने भी गुरु वर्य के उठाए हुए कामको पूरा करने के लिए कमर कसी। ये गुरुवर्य के तैयार किये हुये कार्य क्षेत्र की बडी सावधानी के साथ रक्षा करने लगे। अस्तु, अब हमारे पूज्य श्री मनोहरदास जी ने अपने कुछ शिष्यों को तथा पहले से ठीक आचार-विचार पर चलने वाले सदाचारी साधुओं को ठीक किये हुए [illegible] प्रान्त के संघ का भार सोंपा और स्वयं कुछ भागचन्द्रजी आदि उत्साही

शिष्यों को साथ लेकर नवीन क्षेत्रों में अजैन जनता में जैन धर्म का प्रचार करने के लिये आगे बढ़ चले।

नागोर की तरफ से चलकर प्रत्येक गाँव में धर्मोपदेश करते हुए आप जयपुर प्रान्त में पधारे। यहाँपर आपने नवीन क्रान्ति की लहर दौड़ादी। मनुष्यों को मिथ्यात्व-अंधकार से निकालकर सत्यसूर्य के दर्शन कराए।

इस प्रान्त में आप को व आप के मुनि मण्डल को बहुत-अधिक कष्ट उठाने पड़े। कभी साधु-विधि के अनुसार आहार न मिलने से निराहार रहना पड़ता था। कभी प्यास की व्याकुलता के कारण प्राणान्त कष्ट सहनापड़ता था। कभी गाँव में अपरिचितता के कारण स्थान न मिलने से सुन-सान जंगल में वृक्षों के नीचे रात्रि का समय बिताना पड़ता था। कभी अभद्र मनुष्यों के हृदय–भेदक कटुबचनों को मधुर हँसी में बदलना पड़ता था। कभी पामर प्राणियों द्वारा डंडों की मार को सिर पर ही लेना पड़ता था। कभी शास्त्रार्थ के लिये निर्भय सिंह निनाद करना पड़ता था। कभी वैसेही शंकाशील भद्र मनुष्यों की शंकाओं का सुमधुर समाधान करना पड़ता था। अधिक क्या, कभी कुछ तो कभी कुछ-यों कष्ट पर कष्ट ही थे। पाठको! और क्या लिखें? पूज्य मनोहर सभी तरह मनोहर थे, धीरता के सागरथे, अज्ञान-अन्धकार के दिवाकर थे। आपमें वीरता, धीरता, कार्य कुशलता कूट–कूट कर भरी हुई थी। आपकी इस कष्ट परम्परा की और इस अटल धीरता की याद आते ही एक उर्दू कवि का पद्य याद आजाता है जिसको यहाँ लिखे बिना लेखनी आगे सरकना नहीं चाहती।

अस्तु, प्रेमी पाठक ज़रा शान्ति के साथ यहीं ठहरें और पद्य के मधुमय सौन्दर्य से झन-झनाते हुए शौर्य से अपनी हृदय-वीणा को झङ्कृत करें।

(१)

चेहरे पे मलाल न ज़िगर में असरेग़म ।
माथे पे कहीं चीन न अबरूमें कहीं ख़म ॥
शिक़वां न ज़बांपर, न कभी चश्म हुई नम।
ग़म में भी वोही पेश अलम में भी वोही दम ॥
हर बात हर औकात हर अफ़ आल में खुश हैं ।
पूरे हैं वही "मर्द" जो हर हाल में खुश हैं॥

(२)

कुछ उनको तलब घरकी न बाहर से उन्हें काम ।
तकिये की न ख्वाहिश है, न बिस्तर से उन्हें काम ॥
असतल की हविश दिलमें न मंदिर से उन्हें काम ।
मूफ़लिस से न मतलब न तवंगर से उन्हें काम ॥
मैदान में बाज़ार में चोपाल में खुश हैं ।
पूरे हैं वही "मर्द" जो हर हाल में खुश हैं ॥

अस्तु, सज्जनों! इस प्रकार कष्ट सह—सहकर हरसोरा, बहरोड़, नारनौल, कानोड़, खंडेला, खेतड़ी, सिंघाणा आदि क्षेत्रों में अच्छी संख्या में भव्यमनुष्यों को भगवान महावीर के भक्त बनाए, दया धर्म प्रेमी बनाए, जड़ वाद से आत्मवाद के हामी बनाए। इस प्रचार काल में प्रत्येक क्षेत्र के प्रतिबोध ने की प्रायः खास घटनाएं हुई है जो एक से एक हृदय हारी तथा हृदयमें अज़बगज़ब की उथल-पुथल मचाने

वाली होंगी। परन्तु, खेद है आज हमारा इतिहास अन्धकार में है। हमें अपने पूर्वजों की बातों का ठीक ठीक पता नहीं है। हमारे पूर्वजों ने इतने- इतने महान् काम किये पर उन्होंने अपने कामों की बाबत कभी कुछ नहीं लिखा। उन्हें तो बस काम से प्रयोजन था नाम से नहीं। नाम के पीछे दौड़ा-दौड़ी करने वाले तो उनकी पवित्र संतान हमीं बहुत हैं।

अस्तु, फिरभी हमारे सौभाग्य से एक सिंघाणा प्रति बोधने की कथा परंपरा रूप से चली आती है जिसे मैं यहाँ अंकित करना ठीक समझता हूँ।

कहते हैं-पूज्य मनोहरदासजी अपने शिष्य भागचन्द्र जी के साथ विचरते हुए सिंघाणा पधारे। पर बहुत दिनों से गांवों में रहने की झंझटों से जी उकता रहाथा। कहीं शून्य एकान्त स्थान में रह कर ध्यान लगाने के लिये जी चाह रहा था। अतः पूज्य श्री शहर में न जाकर शहर के पासही एक ऊँचा पहाड़ है उसके शिखरपर जा पहुँचे, एक पहाड़की ढाढका आश्रय लेकर गुरु शिष्य दोनों ध्यान लगा कर बैठ गये। रात के वख्त पहाड़ अन्धकार से आच्छादित होकर कराल काल से भी भयंकर बन जाता था। रात्रि में चारों तरफ से एक साँय-साँय की अव्यक्त सी बिभीषिकापूर्ण आवाज़ आती रहती थी। बीच-बीचमें हवा के झोंकों के कारण आस पास के वृक्षों में से एक अजीबही भयात्मक ध्वनि निकलती रहती थी। बाघ, चीते, जरख जैसे हिंसकजीव अपनी-अपनी भयावह विचित्र बोलियां बोलतेहुये इधर उधर फिरते रहते थे। किं बहुना-दिनावसान के बाद रात्रि में तो-यह पहाड़ अपना समस्त रूपही परिवर्तित कर डालता था।

प्रकृति नटी दिन और रात्रि के रंग-मंच पर बिल्कुल अलग अलग खेल दिखाती है।

अस्तु, पहाड़का यह भयावह रूप मुनि युगल की आँखों के सामने था, पर यह उनके हृदय को भय-भीत न करसका। यह बनी हुई एवं मानी, सुनी बात है कि भय वहीं पहुंचता है जहां पहले से ही वह स्थान पाया हुआ हो।
अस्तु, इसप्रकार तप करते हुए पूज्य श्री को कई दिन बीतगए। न आहार का काम न पानी का काम। भगवद्भजन एवं आत्म चिन्तन ही उस समय उनका मधुर एवं शक्तिप्रद आहार पानी था। गाँव वालों को इस बात का कुछ पता न चला। एक दिन यों ही प्रसंग-वश अचानक कोई गडरिया रेवड़ चराता, हुआ इस तरफ़ आ निकला। ठीक दुपहरी के वक्त उसने वहाँ बैठे-हुए मुनियों को देखा। देखते ही मारे भयके शरीर पत्ते की तरह थर-थर काँपने लगा। शरीर में से एकदम सन्नाटा निकल गया। विचार शक्ति सहसा लुप्त होगई। आँखें पथरा गई। जीवन आशापर पानी फिरगया। बस धैर्य के टूटते ही वह एक दम ऊँचे स्वर से चिल्ली मार कर हा हा हा कर के रोपड़ा।

अस्तु, पूज्य श्री ने ध्यान से उठ कर मधुर वचनों से उसे सान्त्वना दी। अपना परिचय दिया। आपने बतादिया कि हम एक साधु के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। हमारी तरफ से तुझे किसी प्रकार का भी भय नहीं है। हम तुझे तो क्या कष्ट देंगे हमतो उन व्यक्तियों में हैं जो एक कीड़ी को भी अपने प्राणों से अधिक समझते हैं।

अस्तु, बहुत कुछ समझाने—बुझाने के बाद गडरिये के जीमें जी आया। वह समझ गया कि वास्तव में यह तेरा भ्रम था जिसे तैने ठीक समझा, ( गडरियाने भूतकी कल्पना की थी ) वह बार बार मुनि श्री के चरणों में गिरा और क्षमा माँग कर अपने स्थान को लौटा। शहर में आकर उसनें लोगों को यह आप बीती कह सुनाई। सुनने वालों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। सारे शहर में यह खबर बातकी बात में बिजली की तरह फैल गई बस फिर क्या था, लोगों के झुण्ड के झुण्ड पहाड़ की तरफ दौड़ पड़े। कुछही देर में पूज्य श्री के पास एक खासा मेला लग गया। क्या बालक, क्या जवान, क्या बुड्ढे, क्या स्त्रियां, क्या पठित, क्या अपठित, क्या ऊँच, क्या नीच, सभी उपस्थित थे। सभी पूज्य श्री के शशिसम सौम्य-मुख मण्डल को देख-देख कर मुग्ध हो रहे थे। अस्तु, पूज्य श्रीने ध्यान खोल कर उपस्थित जन समूह को बड़ी सरस सरल एवं हृदय स्पर्शी भाषा में उपदेश दिया। व्याख्यान में तथा व्याख्यान के बाद जो जो शंकाएँ उठाई गई उनका बड़ी शान्ति के साथ नपे-तुले शब्दों में युक्ति पूर्ण समाधान किया। हम कौन हैं? किसके उपासक हैं? किस धर्म का पालन करते हैं? और किस लिये जहाँ तहाँ फिरते हैं? इन प्रश्नों काभी उचित समाधान कियागया। इस उपदेश का-इस बार्तालापका उपस्थित जन समूह पर बड़ा प्रभाव पड़ा। सबके हृदय में यह उपदेश वज्र की तरह अंकित होगया। व्याख्यान समाप्ति पर किसी न कुछ किसी न कुछ सभीने अपनी अपनी धारणा के अनुसार नियम व्रत पचखाण ग्रहण किये। अन्त में सबने मिल कर बड़े आग्रह के साथ पूज्य श्री को नीचे शहर में पधार ने के लिये

निवेदन किया, पूज्य श्री ने भी कुछ धार्मिक लाभ जान कर शहर में चलना स्वीकार किया।

अस्तु, संपूर्ण जन समूह के साथ पूज्य श्री शहर में पधारे दीवान सहाबकी बीनति पर दीवान खाने मे ठहरे। अनेक समयोचित विषयों पर व्याख्यान दिये गये। व्याख्यान में श्रोताओं की भीड़का कुछ ठिकाना न रहा। व्याख्यान सुन-सुन कर जनता का अज्ञानान्धकार छिन्न-भिन्न होगया। अन्त मे करीब २०० घरों ने पूज्य श्री से सम्यक्त ग्रहण की। जिनमे से आजभी इतने समय के बाद करीब ५०-६० घर वही पूज्य श्री का बताया हुवा परंपरागत-धर्म पाल रहे हैं। खेद है-बाकी के घर कुछ महामारी की, कुछ दुर्भिक्ष की, कुछ साधुओं की असावधानी की, और कुछ पर देशों में नवीन-संगति की भेट होगये।

सज्जनों! उपर्युक्त घटना आज के तमाम साधु वर्ग की आँखे खोलने वाली घटना है। जिस समय कोई धर्म प्रिय-समाज प्रिय महानुभाव इस घटना पर दृष्टि पात करेगा। वह यह कहे बिना नही रहेगा कि आज के साधु समाज में और तब के साधु समाज में दिन-रात का, ज़मीन-आस्मान का, सूर्य-खद्योत का, और सर्षप-सुमेरु का सा अन्तर है। आज का साधु-समाज तो केवल पूर्वजों की पैदा की हुई संपत्ति का उपभोग करने वाला आलसी पुत्र है नकि स्वयं पैदा करके उपभोग करने वाला उद्योगी पुत्र।

अस्तु, पूज्य श्री इस प्रकार इस प्रान्त में सत्य की दुन्दुभि बजाकर हरियाणा प्रान्त को जगाते हुए जमना उतर कर जमनापार में जा दाखिल हुए। यहाँ पर भी आपने भगवान

महावीर की सुन्दर शिक्षा का डट कर प्रचार किया। जिस के फल स्वरूप आज भी जमनापार के ३०—३५ क्षेत्र प्रातः सायं भगवान महावीर की जय बोलकर अपने को पुण्यात्मा समझते हैं।

प्रिय पाठको! जमनापार प्रान्त के प्रचार की कथा बहुत विस्तृत है तथा साथ ही ऐसी संदिग्ध भी है कि जिस को मैं इस समय इस पुस्तक में नहीं टाँक सकता। अतः अबतो आप इसी पर सन्तोष करें। समय मिला तो फिर कभी इस महापुरुष के इस प्रचार विषय पर ऐतिहासिक शोध-परि शोध के बाद स्पष्टतः प्रकाश डाला जायगा।

## सुधा-धारा

(१) भयंकर से भयंकर दुःखों को शान्ति के साथ सहने सेही महाफल की (मोक्ष की) प्राप्ति होती है।

(२) दुःख और सुख को एक रूप से मानने वाला ही वास्तवमें महा पुरुष है।

(३) जो अपने को ऊँचा और दूसरे को नीचा नहीं समझता है वही सच्चा साधु है।

भगवान् महावीर

# प्रकरण चोथा

## पवित्र आत्माएँ

पूज्य मनोहर दास जी के पाट पर अर्थात् ६५ वें पाटपर भागचन्द्र जी बैठे। आप बीकानेर के रहने वाले ओसवाल थे। आपनें पूज्य श्री मनोहर दास जी के पास बड़े वैराग्य भावों से दीक्षा धारण की थी। आप बड़े भारी विद्वान् आचार्य थे। आपने पूज्य मनोहर दास जी के साथ तथा पृथक् जैन धर्म का अच्छा प्रचार किया। आपके जीवन की प्रचार-सम्बन्धी बहुतसी घटनाएँ हैं। यहाँ विस्तार भय से सब का उल्लेख न कर के एक घटना का ही उल्लेख करते हैं।

काँधला शहर आपका ही प्रतिबोधा हुआ है, कहा जाता है:- जाड़े की मोसम थी। खूब कड़ाके का जाड़ा पड़रहा था। शरीर को कँप-कँपाती हुई बड़ी ठंडी हवा चल रही थी। इसी समय आप और आप के शिष्य सीताराम जी जमना पार में भगवान महावीर के नाम की दुंदुभि बजाते हुए फिर रहे थे। एक दिन की बात है—आप दोनों गुरु शिष्य विहार करते हुए किसी ग्राम को जा रहे थे। संध्या का समय आगया। संसार को अनित्यता का पाठ पढाता हुआ सूर्य अस्ताचल पर गिरने लगा। अस्तु, मुनि युगल ने संध्या समय को देख कर विचार

किया-कि "जिस गाँव को जाना है वह गाँव बहुत दूर है। रात्रि में चलना है नहीं। अतः यहीं कहीं ठहरना चाहिए"।

अस्तु, इधर उधर देखने पर सड़क के पास कुछ फाँसले पर एक गाँव दिखाई दिया। आते जाते राहगीरों से पूछने पर मालूम हुआ कि "यह काँधला शहर है"। मुनि श्री शहर में पहुँचे। स्थान की याचना की। पर, विचित्र वेष को देखकर किसी ने ठहर ने को जगह न दी।

अस्तु, अन्तमें एक भव्य वैश्य मिला। उसने कहा "महाराज! मैं एक गरीब आदमी हूँ। मेरे यहाँ और कोई जगह तो है नहीं। हाँ, एक पुरानी दुकान अवश्य है। जिसके आगे एक टूटासा छप्पर है। यदि आप पसंद करें तो इस के लिये सेवक हाज़िर है" मुनि श्री ने उत्तर दिया "कोई हर्ज नहीं है। साधुओं के लिये नया-पुराना सब एक है। हमें तो ठहर ने के लिये केवल स्थान की जरूरत है-नये-पुराने की नहीं। परन्तु, जल्दी करनी चाहिये। सूर्य अस्त होजाने के बाद हम लोग गमना गमन न करेंगे।" अस्तु,-भक्त वैश्य साथ होलिया। मुनि श्री दुकान पर पहुँच गए। बाहिर छप्पर में आकर खड़े हुए। इतने में ही किसी आदमी ने आकर कहा-"शेठजी! जल्दी घर आइये। शेठानी आप को घर बुला रही है।" शेठजी घबरा गये। मन में धुकड़-धुकड़ मच गई। झट कुछ सोचा न विचारा कह उठे- "महाराज ज़रा आप यहाँ खड़े रहें। मैं घर जाकर अभी-अभी ही आरहा हूँ।" शेठ चल दिया। फिर लौट कर स्वकथनानुसार न आया। उसे मुनि श्री का बिल्कुल ध्यान नरहा। मुनि श्री सारी रात छप्पर में खड़े रहे। ठंडी हवा के झोंके पर झोंके आ-

आकर मुनि श्री को विचलित करने का प्रयत्न करते रहे। परन्तु, मुनि श्री कौन थे। भगवान महावीरकी ही तो शिष्य संतान में से थे। पुत्र में पिता श्री के सारे गुण नहीं तो कुछ तो आही आते हैं। मुनि श्री अचल रहे, स्थान दाता की आज्ञा का ठीक-ठीक पालन करते रहे। अस्तु, प्रभात हुआ। सूर्य आकाश के रंग मंच पर फिर अपना पार्ट अदा करने को आखड़ा हुआ। शेठ घर से बाज़ार को जाता हुआ अचानक अपनी दुकान की तरफ लखा पड़ा। मुनि श्री खड़े हुए दिखाई दिए, वह झट पट मुनि श्री के पास आया और नमस्कार करके मुनि श्री से पूछा "महाराज! इतनी जल्दी प्रस्थान! अभी तो ठहर ते।" मुनि श्री ने उत्तर दिया-"भाई! प्रस्थान कैसा? यहाँ तो जैसे तुम कह कर गए थे वैसेही खड़े हुए हैं। क्यों तुम यह कह कर गये थे ना, कि महाराज ज़रा खड़े रहें, मैं घर जाकर अभी अभी ही आरहा हूँ।" शेठ सुन कर स्तब्ध हो गया, बोला क्या महाराज बाहिर ही खड़े रहे? साँकल खोल कर भीतर दुकानमें आराम नहीं किया?" मुनि श्री ने कहा-"हाँ भाई यहीं खड़े रहे। विना आज्ञा साँकल खोल कर भीतर कैसे जा सकते थे। ऐसा करना हमारे धर्म के विरुद्ध है।" शेठ आश्चर्य से चकितसा खड़ा रह गया। हाथ जोड़ कर चरणों में गिर कर कहने लगा— "महाराज मेरी भूल होगई। मैं यह शब्द अपनी सीधी सादी बोल-चाल में कह गया था, मुझे यह पता न था कि आप इस प्रकार इसे समझेंगे और सारी रात ज़ाड़े का कष्ट सहते रहेंगे। ख़ैर, अब जो हुवा सो हुवा अबतो कृपा करके ठरियेगा। अब मैं आपको यों नहीं जाने दूँगा। क्या कहूँ, अब तक मैं आपको कुछ और ही समझ रहा था।" मुनि श्री— अवसर देख कर ठहर गए।

शहर में यह बात बिजली की तरह फैल गई। जिसने सुना उसने ही आश्चर्य का सीकारा भरा। जनता के हृदय पर मुनि-श्री का प्रभाव बैठगया। मुनि श्री में विविध विषयों पर बड़े प्रभाव शाली व्याख्यान दिये। व्याख्यान में श्रोताओं का समुद्र उमड़ पड़ा; कहा जाता है—अन्त में कुछही व्याख्यानों में लग-भग २५०-२७५ घर जैनी दीक्षा से दीक्षित होकर भगवान महावीर के देश व्रती शिष्य बने। आज कांधला शहर जमना पार के मुख्य क्षेत्रों में गिना जाता है। ऐसे धर्म प्रचारक मुनियों के चरणों में लेखकका हज़ार बार प्रणाम है।

(७०) **सीताराम जी**—आप बड़े ही शान्त स्वभावी एवं वैरागी मुनि थे। आप जैन जैनेतर दोनों शास्त्रों के ज्ञाता थे। आप के आचार्य काल में इस संप्रदाय की अच्छी उन्नति रही। आप नारनौल के रहने वाले अग्रवाल वैश्य थे। आचार्य भागचन्द्र जी के सदुपदेश से आप को वैराग्य होगया, और झट-पट धन वैभव का परित्याग कर आप उनके शिष्य बन गए। कांधला के प्रति बोधकी उपर वाली घटना में आप भी गुरुवर्य के साथ थे। गुरुवर्य के बाद आपको ही योग्य जान कर श्री संघ ने आचार्य पदवी दी।

(७१) **स्योरामदास जी**—आप दिल्ली के रहने वाले थे। आपकी जाति श्रीमाल थी। आप के समय में दिल्ली मुसलमान शासकों से शासित थी। आपका समय वह समय था जब राज्य विप्लव के कारण ज़मीन आये दिन खून से तर होती रहती थी। कहाजाता है-जिस समय आपका जन्म हुवा उस समय देहली में

तलवारें खन-खना रही थी। लूट-मार के कारण निरपराध मनुष्यों के रक्त से ज़मीन रंगी जारहीथी। दयालु माता नें आपको फूंस के ढेर में छुपा कर आपकी प्राण रक्षा की।

अस्तु, आप जब पढ़-लिख कर हुंसियार हुए तब माता-पिता ने आप के विवाह की तैयारी की। परन्तु, यह किसे ख़बर थी कि आपका विवाह किस रूप में होने वाला है? समयकी गति विचित्र है। अब फिर देहली ने लाल रूप धारण करलिया। अबफिर पहले की तरह तलवारें म्यान से बाहिर होकर बुभुक्षित सर्पिणी के समान लप-लपाने लगी। लोगों के धन और प्राण दोनों पर आ बनी। किसी ने कहीं तो किसी ने कहीं लुक-छिप कर धन की परवाह न करते हुए अपने प्राणों की रक्षा की। इस समय आप तथा आपके परिजन तीन दिन तक तलघर में पड़े रहे। आपने वहीं पड़े हुए प्रतिज्ञा की कि यदि इस कष्ट से बच जावूँ तो दीक्षा धारण कर जावूँ।

विद्रोह शान्त हुवा। आप अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार पूज्य सीतारामजी के पास दीक्षा धारण कर साधु हो गये। आप बड़े प्रतापी एवं प्रभावी साधु बने। गुरु श्री के परलोक के बाद आप अपनी योग्यता के बल से आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। वृद्धाऽवस्था में जंघा-शक्ति क्षीण हो जाने पर आप सिंघाणे स्थानापति होकर ठहरे। अन्तिम—समय पर आपनें संथारा किया। संथारा करने से पहिले आपने श्रावकों को कहदिया कि "देखना, प्रारंभ से ही मेरा जीवन तलवारों की छांया में रहा है। मैं दो प्रसङ्गोंपर वीर प्रभु की कृपा से तलवार की पैनी धार से बच निकला। पर मैं देखता हूँ कि अभी मेरी लाश

पर अन्तिम तलवार चलनी बाकी है। अत: मैं, तुम्हें चेताए देताहूँ कि उस समय ज़ोश में आकर कुछ गड़—बड़ मत कर बैठना। जो वार आवे उसे शान्ति से सहना। शान्ति में ही सब कुछ है। तुम बीर के पुत्र हो अतः बीर की आज्ञा पालन करना।"

अस्तु, संथारा पूर्ण हुआ। आपने सद्गति प्राप्ति की। बड़ी सज धज के साथ विमान शहर में घुमाया जाने लगा। सत्पुरुषों के बचन कहीं टला करते हैं? धर्म द्वेषियों ने राज्य में खबर कर दी कि-"एक जैनी साधु की लाश शहर में घुमाई जा रही है। साधु की अखण्ड लाश का शहर में इस प्रकार घुमाना राज्य के लिये पूरा-पूरा भारी है।" बस फिर क्या था बावले राजपूत भड़क उठे। आव देखा न ताव झट चम चमाती हुई नंगी तलवारें लेकर लाश को खण्डित करने दौड़ पड़े। उस समय आपका विमान (अर्थी) बीच बाज़ार में से गुज़र रहा था। भीड़ का कुछ पार न था। विमान के चारों तरफ़ जन समुद्र उमड़ा पड़रहाथा। अस्तु, भीड़ को चीरते हुए विचारान्ध राजपूत विमान के पास जा लिये और लाश पर तलवारों के वार करने शुरू करदिये। जनता में खल-भली मचगई। चारों तरफ़ भगा दौड़ होने लगी। कायरों की आँखें चुँधिया गई। वे न समझ सके कि, अब क्या किया जाय। किन्तु, साहसी बीर इस बिकट परिस्थिति को देखकर दृढ़ता के साथ आगे बढ़े। ये अपने प्राणों की परवा न करते हुए तलवारों को उपर की उपर अपने हाथों पर ओटने लगे। पाठको! धर्म का प्रभाव अति बिचित्र है। धर्म के आगे सारी की सारी पाशविक शक्तियाँ

कुंठित हो जाती हैं। धार्मिक शक्ति के कारण वे तलवारें एक लकड़ी से अधिक कुछ न कर सकी। किसी को कुछ आघात न पहुँचा। लाश ज्यों की त्यों, अखण्डित बनी रही। धर्म द्वेषी व आक्रमण कारी सब के सब लज्जित हो गये। सब अपना-सा मुँह लेकर आर्खीर चलते बने। बड़े आनन्द के साथ शहर में सब स्थानों में घुमाकर अग्नि संस्कार कर दिया गया। पश्चात् श्रावकों से न रहा गया वे एक मण्डल के रूप में खुद महाराज साहब के पास खेतड़ी पहुँचे। तमाम घटना जिस प्रकार बीती-थी कह सुनाई। खेतडी नरेश सुनकर क्षुब्ध हो उठे। उन्हों ने उसी समय आज्ञा देदी कि "जब तक ये विद्रोही न पकड़े जाँयगे तब तक मैं अन्न जल नहीं ग्रहण करूंगा"। कहा जाता है उसी समय खेतड़ी से २५ सवार सिंघाणे आए। इस घटना में जिन जिन का हाथ था वे सब पकड़ लिए गए। खेतड़ी नरेश ने अभियोग के विचार के बाद शीघ्र ही सब को कठोर दण्ड की आज्ञा देदी। किसी को दण्ड से अछूता न रक्खा।

किन्तु, अपराधियों द्वारा पैर पकड़ लेने पर श्रावक मण्डल ने आचार्य श्री के वचनों को स्मरण करते हुए सबको क्षमा प्रदान करदी अर्थात खेतड़ी नरेश से सबको क्षमा दिलवादी। खेतड़ी नरेश विस्मित होगये। इतना भयंकर अपराध फिर ऐसी झट-पट क्षमा? वास्तव में जैनी जैसे कहे जाते हैं वैसे ही दयालु हैं।

पाठक वृन्द! ऐसे ही प्रभावशाली आचार्यों ने इस जैन समाज को अबतक जीवित रक्खा है। यदि ऐसे आचार्य न होते तो विरोधी कभी के इसे नाश शेष कर देते। ऐसे आचार्यों के प्रति लेखक की सभक्ति बन्दना है।

**(७२) नूणकरण जी**—आप भी बड़े तेजस्वी महात्मा थे। आपकी सूत्र विषयिक धारणा साधु- समाज में अबाधित रूप से मानी जाती थी। आप जटिल से जटिल प्रश्नों का समाधान बड़ी शीघ्रता के साथ कर दिया करते थे। आप सिंघाणे के रहने वाले अग्रवाल वैश्य थे। आपने शिवरामदासजी के पास दीक्षा धारण की थी। शिवरामदासजी के बाद आप आचार्य पदवी से विभूषित हुए।

**(७३) तुलसीराम जी**— आप बड़े भारी विद्वान् आचार्य थे। आपने आचार्य पद प्राप्त करके बड़ी योग्य रीति से संघका संचालन किया। आपका विचार बहुत दूर–दूर तक घूम कर जनता में जैन धर्म का प्रचार करने का था। किन्तु खेद है— युवावस्था में ही आपके पैरों में वात- व्याधि होगई जिससे आप अपनी इच्छानुसार न घूम फिर सके। आप व्याधि के कारण सिंघाणे में ही स्थानापति रहे। सारे सिंघाणे में आपका बचन एक राजा का बचन माना जाता था। आपका बचन अटल था। जो कुछ मुँह से कह दिया वह ज्यों का त्यों ठीक पूरा हुवा। आपकी बचन सिद्धि की कथाएँ आज भी सिंघाणे में बड़ी श्रद्धा के साथ कही जाती हैं। संवत् १९१८ में आपका देहावसान सिंघाणे में ही हुवा। कहते हैं तब ऊँच नीच सारी जातियाँ आपके विमान के साथ थीं। सबकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग- रही थी। सभी के हृदय में आपके मृत्यु का शोक हुवा। धन्य है आप जैसे सर्वप्रिय मुनि राजों को। आप जैसे मुनि राजों से ही यह भारत-भूमि पवित्र गिनी जाती है।

# प्रकरण ५ वाँ

## गुरु-देव।

किं दुर्लभं सद् गुरुरस्ति लोके
"श्रीशंकरः"

प्रिय पाठको! अब आपको चरित्र नायक के सद् गुरु का परिचय कराया जाता है। चरित्र नायक के गुरु श्री मंगल-सेनजी महाराज थे। आपका जन्म विक्रमाब्द १९०२ में राज-पूताना जयपुर राज्य के परशुराम पुर नामक गाँव में हुवा। आप भगवान महावीर के प्रधान श्रावक सकडाल के वंश (कुंभकार) में पैदा हुए थे। आप के पिता का नाम बक्सीराम और माता का नाम रामबाई था। गाँव के एक साधारण कुटुम्ब में जन्म होने से आप को गृस्थ में किसी प्रकार की पाठशाला सम्बन्धी शिक्षा न मिली। हाँ, सर्वोपरि शिक्षक माता पिता से सदाचार की शिक्षा अवश्य मिली थी। जिस शिक्षा ने आगे चल कर आपके जीवन में बड़ा-भारी महत्व पूर्ण परिवर्तन किया। आप बचपन से ही साधुओं के भक्त थे। आपके गाँव में जिस किसी भी बेष के साधु आते तो पता होते ही आप उनकी सेवा में पहुँच जाते। आप साधुओं से हरि भक्ति के भजन सुनते और स्वयं भी टूटे-फूटे भजन गाते। आपका कण्ठ सुस्वर था। जो सुनता वही मुग्ध हो जाता। उस समय किसे पता था कि आप आगे इस प्रकार आत्मोन्नति के पथपर अग्रसर होंगे।

अस्तु, अब आपके संयम ग्रहण आदि विशिष्ट कार्यों का संक्षिप्तसा कथन किया जाता है। पाठक महोदय ध्यान पूर्वक पढ़ें।

आपके गाँव में जैनियों की बस्ती नहीं होने से साधुओं का आना-जाना नहीं होता था। हाँ, कभी सिंघाणा से कुचामण और कुचामण से सिंघाणे जाते हुए साधु कुछ देर के विश्राम के लिये गाँव के बाहर वृक्षों के नीचे अवश्य ठहर जाया करते थे। कुछ आहार पानी की ज़रूरत हुईतो गाँव में फिर फिरा कर लिया, नहीं तो नहीं। गाँव के कुछ थोड़े ही ऐसे आदमी थे जिन्हें जैनी साधुओं की बाबत कुछ मामुली सा पताथा।

अस्तु, एक दिन का प्रसंग है कि तपस्वी श्री ख्यालीरामजी महाराज कुछ मुनि राजों के साथ कुचामण की तरफ़ से बिहार करते हुए सिंघाणे की तरफ़ आ रहे थे। जेष्ठ का महिना था। गर्मी बहुत तेज़ पड़ रही थी। चलते चलते ठीक दुपहरी का समय आगया। सूर्य देव मध्य आकाश में जा पहुंचा। बागड़ भूमि का वालूरेता मर्यादा से अधिक उष्ण होकर धंधकने लगा। बड़ी कठिनाई से ज्यों-त्यों करके मुनि मण्डल ने परशुराम पुरा लिया। कुछ साधुओं के पैरों में तो छाले भी पड़गए। अन्त में समय की परिस्थिति को देख कर तपस्वी जी ने परशुराम-पुर में ही ठहर ने का निश्चय किया। साधु योग्य स्थान की गवेषणा में गाँव में बड़े ही थे कि मंगलसेनजी मिलगए। इस समय आपकी अवस्था लगभग १६ वर्ष के होगी। आपने भक्ती के साथ झुक के नमस्कार किया और कुछ विचित्रसा अदष्ट पूर्व वेष देखकर विनय के साथ पूछाः—

मंगलसेनजी— महाराज ! आप कौन हैं ?

तपस्वी जी— भाई ! हम जैन साधु हैं।

मंगलसेनजी— मैंने तो ऐसे साधु आज ही देखे।

तपस्वीजी— हाँ, भाई ! हम इस तरफ़ कम आते हैं।

मंगलसेनजी— कम क्या यों कहिये नहीं आते हैं।

तपस्वीजी— हाँ, एक दृष्टि से ऐसा ही है।

मंगलसेनजी— महाराज ! कहिये फिर आज कैसे कृपा की।

तपस्वीजी— धूप बहुत तेज़ होगया है। अतः आगे न जाकर यहीं ठहरने का विचार है।

मंगलसेनजी— अच्छा महाराज ! पधारिये।

तपस्वीजी — कहाँ भाई !

मंगलसेनजी— मेरे घर पर

तपस्वीजी — भाई ! घर में तो हम एक कारण से नहीं ठहरेंगे।

मंगलसेनजी—वह क्या कारण है ?

तपस्वीजी —क्यों भाई ! घर में तो औरतें भी होंगी ना ?

मंगलसेनजी—क्यों नहीं एक मेरी माता है। जो आप साधुओं की बड़ी भक्त है। वह आपके भोजन पान का भी ठीक प्रबन्ध कर देगी।

तपस्वीजी —ना भाई ! जहाँ स्त्रियाँ रहती हैं वहाँ हम नहीं ठरा करते हैं।

मंगलसेनजी—क्यों क्या कारण ?

तपस्वीजी —बस अबतो यही समझले कि हमारे गुरु की आज्ञा नहीं है।

मंगलसेनजी—तो खैर, महाराज ! घर में नहीं सही। नोहरे में तो ठहर सकते हैं।

तपस्वीजी —हाँ, ठहर सकते हैं। किन्तु, वहाँ ढंगर ढ़ोर तो नहीं बँधते हैं।

मंगलसेनजी—नहीं महाराज ! इस समय फूँस के तोड़ से हमारे कोई ढंगर ढ़ोर नहीं हैं।

तपस्वीजी —तो फिर ठीक है। कोई हर्ज़ नहीं।

अस्तु, इस प्रकार बात चीत होने के बाद तपस्वीजी मंगलसेनजी की आज्ञा लेकर नोहरे में ठहर गए। साधुओं ने अपने पसीनों से भींगे हुए कपड़े इधर-उधर सुखा दिये। गर्मी से घबराए हुए साधुओं की हालत को देख कर मंगलसेनजी ने कहा- महाराज ! प्यास लगरही होगी। आज्ञा दें तो आपके लिये ठंढा पानी लाऊँ। तपस्वीजी ने हँस कर समझाया- नहीं हम इस तरह से भोजन पानी नहीं लेते हैं। तुम हम साधुओं के व्रत नियमों से अनभिज्ञ हो इस लिये ऐसा कह रहे हो ! अब हमारे साधु पानी के लिये जायँगे जब तुम देखना हम किस तरह से भिक्षा लिया करते हैं। अस्तु, साधु झोली में पात्र रख कर पानी के लिये घर- घर फिरने लगे। कहीं कुछ कारण हुवा तो कहीं कुछ कारण हुवा यों बहुत कुछ देर फिरने के बाद थोड़ा सा साधु योग्य पानी मिला। साधुओं ने स्थान पर आकर तपस्वी जी के आगे विनय वंदना के साथ जल पात्र रख दिये। तपस्वी जी की आज्ञा मिलने पर थोड़ा- थोड़ा करके सब साधुओं ने पानी पिया। मंगलसेनजी ने अथ से इति तक साथ-साथ फिर कर जो साधु- विधि का अवलोकन किया तो नियमों के काठिन्य पर आश्चर्य मुग्ध होगए। "वास्तव में साधु हैं तो यह हैं" यह भावना हृदय- पट पर बड़ी मज़बूती से जम गई। अस्तु, तपस्वीजी

की तरफ़ से उपदेश का इशारा पाते ही आपके हृदय में हर्ष की सीमा न रही। आज नये साधुओं का नया उपदेश सुनने को लालायित हो उठे। आपने, झट-पट अपने माता पिता को तथा अन्य सत्संगियों को ख़बर करदी। श्रोताओं की संख्या ख़ासी होगई। तपस्वी जी ने ग्राम्य दशा को ध्यान में रखते हुए। छोटा-सा उपदेश दिया। जिसका श्रोताओं पर बड़ा प्रभाव पड़ा। बहुतों ने नियम, प्रत्याख्यान ग्रहण किए। किन्तु, सज्जनो! उस श्रोतृ-मण्डल में जिस श्रोता पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा। वह वहीं मंगलसेनजी थे। जिनका वर्णन आप उपर पढते हुए आ रहे हैं।

आपने उपदेश क्या सुना? आपका लक्ष्य-बिन्दु बदल गया। आपके हृदय में वैराग्य का समुद्र हिलोरें मारने लगा। अब आपने सदा के लिए तपस्वी जी के चरणों में ही रहने का दृढ निश्चय कर लिया। रात को भी आप तपस्वी जी की ही सेवा में रहे घर जाकर न सोए। उन्नति—शील आत्माओं की कार्य संलग्नता इसी प्रकार की होती है। अस्तु,—तपस्वी जी तो रात रह कर प्रातः सूर्योदय के बाद सिंघाणे को पधार गए। एकाकी नहीं; साथ में आपका पवित्र-चितभी था। अब गाँव में आपका मन न लगा। आपकी संसार से उदासीनता बढती ही गई। कुछ दिन तो आपने अपना विचार हृदयभूमि में ही रोके रक्खा। आख़िरकार—जब न रहा गया तो माता पिता के सामने आपने अपना बिचार प्रगट करदेने पर उनके दुःख का ठिकाना न रहा। माता-पिता ने ऊँच-नीच कर के आपको बहुत कुछ समझाया-बुझाया। किन्तु—आप अपनी

धुनपर अटल रहे। गाँव वालों को ख़बर होते ही उन्हों ने भी आ-आकर अपनी वाक् पटुता से काम लिया। पर उस वाक् पटुता का क्या असर हुवा? उन की इच्छा के विपरीत। आप उस समय चूने के फ़र्श बन गए। चूने के फ़र्श पर जितनी अधिक थपकियाँ लगती चली जायँगी उतना ही वह अधिक मज़बूत व पायदार बनता चला जायगा। जो युक्तियाँ आप को डिगाने के लिये प्रयोग की गई थीं वेही आप को अटल-अचल बनाती चली गई। अब क्या था? गाँव में यह एक सन-सनीदार घटना होगई। सबकी जिह्वापर हरदम बस एक यही ज़िक्र रहने लगा। अबतो पिताने आपके उपर भाग जाने के डर से करड़ा नियंत्रण क़ायम कर दिया। आपकी पूरी-पूरी निगरानी रक्खी जाने लगी। कहीं इधर उधर बाहर आने-जाने से भी आप रोके गये। पर, कहीं दुनियाँ में ऐसा होता है? क्या कभी सच्ची लगन वाला इस प्रकार थामा थम सकता है। नहीं कभी नहीं। योंतो थमनेवाले ही थमा करते हैं, नहीं थमनेवाले नहीं। पाठक जानते हैं— मीराबाई पर क्या बीती थी? उस पर कैसा करड़ा नियंत्रण किया गया था? वह भी किसकी तरफ़ से? मामूली हैसियत के आदमी की तरफ़ से नहीं। उस राणा की तरफ़ से जो वीर रक्त रंजित चित्तोड़ भूमि के शासकों में एक था। पर अंत में क्या हुवा? किसकी इच्छा सफल हुई? कौन हारा? कौन जीता? दुनियाँ जानती है- इस प्रबल द्वन्द्-युद्ध में यह-यह कौन? अवलाकी जाति, मीराबाई जीती। जीती भी कैसे? बड़ी शान के साथ। और वह यह कौन? अपनी नंगी तलवार से बड़े-बड़े युद्ध वीरों के छक्के छुड़ाने वाला राणा हारा। हारा भी कैसे! बड़ी परेशानी के साथ।

अस्तु— मंगलसेनजी रात्रि के समय अवसर देखकर घर से निकल चले। अँधेरी रात, सुनसान जंगल रास्ते का कहीं कुछ पता नहीं। कोई साथ नहीं। केवल उज्जड़ पंथ सिंघाणे की सीध करली। बड़े-बड़े पर्वताकार बालू रेता के टीबों को लाँघते हुए सिंघाणे गुरु चरणों में जा पहुँचे। तपस्वीजी के पूछने पर आपने अपना आशय कह सुनाया। तपस्वीजी एक दम आश्चर्य में आगये। एक दिन के उपदेश से इतना परिवर्तन? वास्तव में यह एक आश्चर्य की ही बात थी। गुरु की आज्ञा में रहना होगा। कभी विधी पूर्वक आहार पानी न मिलने से भूखा प्यासा भी रहना पड़ेगा। चाहे कोई दुर्वचन कहे—चाहे कोई मारे पीटे, सब कुछ शान्ति से सहना होगा। यों एक-एक करके संयम की कठनाइयाँ तपस्वीजी बताते चले गये। हाँ मैं तैयार हूँ। इन कठिनाइयों को कोई परवा नही। जो आपत्तियाँ आयँगी वे सब सहर्ष झेली जायँगी। जिस शक्ति से आप यह काम कर रहे हैं। क्या वह शक्ति आप गुरु बन कर मुझे न देंगे क्यों न देंगे ? अवश्य देंगे। आखिर गुरु फिर करता ही क्या है बस महाराज! मैं सारी तरह तैयार हूँ। अबतो यह शिष्य गुरु के पथ पर चल कर ही रहेगा"। भाव संयमी गंभीरता के साथ उतर देते चले गये। तपस्वीजी ने फिर बात-चीत जारी रखते हुये पूछा—

"क्या तुम्हारे माँ बाप ने तुम्हें इसके लिये आज्ञा देदी है?"

"जी नहीं, वेतो मेरे इस निर्णय से सर्वथा विरुद्ध हैं"

"यदि ऐसा है तो हम तुम्हें अपना शिष्य न बना सकेंगे"

"क्यों नहीं बना सकेंगे जब कि मैं खुद तैयार हूँ"

"यहठीक है, पर बिना माँ बाप की आज्ञा के जैन साधु

किसी को मुंडित नहीं करसकता"

"यहतो एक बहुत कठिन बात है, भला वे क्यों आज्ञा देने लगे"

"यह बात नहीं, वे अवश्य आज्ञा दे देंगे, तुम उन्हें यहां बुला कर शान्ति से समझावो"

अस्तु, आपके कहने पर श्रावकों ने परशुरामपुर खबर दे दी। वहां पर खोज होही रही थी। खबर पाते ही माँ—बाप सगे सम्बन्धी सब के सब सिघाणे आपहुंचे। बहु त कुछ कहा-सुनी के बाद आज्ञा मिल गई। अब आप तपस्वी जी की सेवा में रह कर संयम लेने की भूमिका तैयार करने लगें। सामायिक प्रति-क्रमण आदि सीखने लगे। साथ-साथ वर्ण माला का भी अभ्यास करने लगे। अस्तु, तपस्वी जी विहार करते हुए जमना पार काँधले पहुंचे। चतुर्मास की वीनति होने पर विक्रमाब्द १९२१ का चतुर्मास तपस्वी जी ने काँधले किया। इसी चतुर्मास की कार्तिक कृष्णा सप्तमी के दिन बड़ी धूम-धाम के साथ मङ्गल-सेन जी दीक्षा लेकर महाराज मङ्गलसेन जी बनगये। अब आप दत्त चित्त से गुरुजी की सेवा करने लगे "कब किस प्रकार गुरु सेवा में त्रुटि रह गई., यह आप सतत विचार ते रहने लगे, गुरु जी से यथा योग्य जैन शास्त्रों का अध्ययन करने लगे। परन्तु—दैव गति प्रवल है। वह किसी से टारे नहीं टरती। अफ़सोस! जिन गुरुकी दया—दृष्टि से आप संसार के दल—दल से निकलकर संयम के सुन्दर मानस सरमें स्नान करने लगे थे वेही आप के गुरु देव हा! अफ़सोस! वही आप के गुरुदेव इस क्षण भंगुर शरीर का परित्याग कर दुनियांकी अपवित्र आँखों से ओझल होगये। आपकी गुरु सेवा सम्बन्धी मनकी भावना मनमें ही रहगई। केवल तीन वर्ष ही आप गुरु सेवा का लाभ

उठासके। पर इसी सेवा से आप में इतनी धीरता आगई थी कि, आप इस विपत्ति परीक्षा में विचलित न हुये। जब श्रावकों ने गुरु वियोग की बाबत सान्त्वना वचन कहे तो आपने हँसकर कहा-भाई! क्या कहते हो! गुरु महाराज का ही तो देहान्त हुआहै। उनके शिक्षा वचन तो मेरे हृदय पट पर अभि जीवित खेल रहेहैं। जब तक ये शिक्षा वचन जीवित हैं तब तक मुझे किस बातकी परवाह है। ये वचन मेरी संयम नैया को सुख पूर्वक पार लगा देंगे यह मुझे पूरा विश्वास है। धन्य धैर्य! धन्य गुरुवचन भक्ति! अस्तु, गुरु श्री के देहावसान के बाद आप गुरु श्री के प्रेमी मुनि पं० धर्नीदास जी महाराज की सेवा में रहने लगे। उनके पास आप ने जैन सूत्रों का अध्ययन किया। कुछ ही समय में आप एक योग्य विद्वान् मुनियों की गिनती में गिने जाने लगे। आपका व्याख्यान शक्तिभी कुछ कम न रही। आपका व्याख्यान एक प्रौढ व्याख्यान था। आपके व्याख्यान में एक विचित्र ही माधुर्यथा। आपकी आवाज बुलंद थी श्रोताओं पर प्रभाव गेरने वाली थी। लेखक भी वृद्धावस्था में आपकी सेवामें रहा है। ७० वर्ष की बुढापे की अवस्था में भी आपकी आवाज़ में नवयुवकों को चमकाने वाली कड़क थी। आपने अपने समय में जैन धर्म की बहुत उन्नति की। जमनापार, जयपुर, अलवर आदि प्रान्तों में आपने जैन जनता के साथ—साथ अजैन जनता को भी भगवान महावीर का संदेशा सुनाया। आपके धर्म प्रचार की बहुतसी ऐसी घटनाएँ हैं। जिनका यहां उल्लेख किया जाना ज़रूरी है। परन्तु- विस्तार- भयसे सबका उल्लेख न करके केवल दो तीन घटनाओं का ही उल्लेख किया जाता है।

सिंघाणा—विक्रमाब्द १९५३ में आपका चतुर्मास सिंघाणे हुआ। बड़ी भारी धर्म की उन्नति हुई। सिंघाणे में एक वैश्य परिवार है जो कुंजा का के नाम से प्रसिद्ध है। इस परिवार के १०—१२ घर हैं। यह आप के श्रम से मिथ्यात्व को छोड़ कर सम्यक्त धारी बना, इस प्रतिबोध में आपको बहुत कुछ निन्दा-बुराई सहनी पड़ी। परन्तु-आपने इसकी कुछ ग्लानि नहीं की। आप अपने काम पर दृढ रहे।

वामनोली—विक्रमाब्द १९४९ में जमनापार—वामड़ोली क्षेत्र के १०० घरों की किसी कारण को लेकर श्रद्धा भ्रष्ट होगई थी। बड़े—बड़े क्षेत्रों के बहुत से भाई समझाने गए लेकिन किसी की कुछ न चली। बहुत से मुनिराज भी इस कार्य के लिये वामड़ोली गये पर सफलता से न लौटे। अन्त में आप को खबर दी गई। आप खबर पाते ही बड़ी शीघ्रता के साथ वामड़ोली पहुंचे। पहुँच ते ही आपने ओजस्वी सुमधुर व्याख्यानों द्वारा एक दम स्थिति परिवर्तन करदी। जो शँकाएँ लोगों के दिलों में घुसी थी वो सब शास्त्रीय युक्तियाँ द्वारा बाहिर निकाल दी गई। जो श्रद्धा का महल गिरने को डगमगा रहा था, वह आपके कार्य कुशलता से पुनः सुदृढ होगया। आपका यह कार्य आपकी चिरकाल तक याद दिलाता रहेगा।

सामड़ी-विक्रमाब्द १९७१ में सामड़ी का क्षेत्र आपने अपनी वृद्धावस्था में खोला था। सामड़ी में कोई जैन साधु आता जाता नहीं था। जितने भी जैनों के घर थे सब के सब मिथ्यात्व में फँस गये थे। प्रसङ्ग वश, आप रोहतक से विहार

करते हुये सामर्डी आ पहुंचे। इस समय आपके साथ श्रीरघुनाथ-दास जी थे।(श्रीरघुनाथ दास जी चरित्र नायक के बड़े गुरु भ्राता हैं। जैन शास्त्रों के बड़े विद्वान् हैं। सामर्डी क्षेत्र के प्रतिबोधमें गुरु श्री को सराहनीय सहायता देने का शुभ सौभाग्य आपही को प्राप्त हुवाथा) आप को बड़ी मुश्किल से ठहरने को जगह मिली। गोचरी में भी आप के साधुओं को कुछ कठिनता पड़ी। क्षेत्र की परिस्थिति को देख कर आप वहीं दृढता के साथ ठहरे। उपदेश दिया गया। जनता का अज्ञान काई की तरह फटता चला गया। भगवान महावीर के सुपुत्र अपने पिता के बताए हुए मार्ग को भूलकर इधर उधर भटक रहे थे, आप के सदुपदेश से फिर परम पिता के मार्ग पर आ डटे। आज आप नहीं हैं। पर आपको स्मरण कराने वाला सामर्डी क्षेत्र आज भी आप के बताएहुए मार्गपर चलकर आत्म कल्याण कर रहाहै। धन्य है ऐसे धर्म प्रचारक मुनियोंको। ऐसे मुनिही वास्तवमें धर्मरक्षक कहातेहैं। आप शास्त्र स्वाध्यायी भी एकही थे। आप कभी स्वाध्याय करने में आलस्य नहीं करते थे। आपकी जैन शास्त्रों पर बड़ी अटल श्रद्धा थी। कभी- कभी प्रसंगवश आप कहा करते- जैन शास्त्र वे शास्त्र हैं जो यहाँ बैठे तीनों लोकों की सैर करवाते हैं। यदि कोई नर्क- स्वर्ग अपवर्ग की ठीक-ठीक व्याख्या करने वाले संसार में शास्त्र हैं तो वे जैन शास्त्र ही हैं" आप कहते कि- यह मैं कोई पक्षपात से नहीं कहता हूँ। मेरी अन्तरात्मा ऐसा ही अनुभव कर रही है। आप ऐसा मानें न मानें यह आपकी इच्छा है,, जब आपकी अवस्था लग भग ७० वर्ष के हुई तो आपकी नेत्र- ज्योति कुछ कम होगई थी। तबसे आपका पुस्तक लेकर स्वाध्याय करना छूट गया। केवल कंठस्थ सूत्रों के पाठपरही

स्वाध्याय तप रह गया। आप आनुपूर्वी बड़े प्रेम से- श्रद्धा से फेरा करते थे। साधुओं ने आपके लिये मोटे- मोटे अक्षरों में एक आनुपूर्वी लिखदी थी, वह आपके पास अन्त समय तक रही। आपकी रात्रि भी अधिकतर भजन ध्यान में ही बीता करती थी जब प्रातः काल के शुद्ध समीर में आपकी स्तोत्र पढने की मन्द- मन्द- मधुर- ध्वनि झंकृत होती थी तब साथही सुनने वालों की हृदय वीणा भी सहसा झंकृत हो उठती थी। आप जिस समय भक्ति से गद् गद् होकर:—

"श्री जिन मुझने पार उतारो, मैं तो सेवक हूँ चरणारो,,

वाला चतुर्विंशतिस्तव पढते थे तब देखते ही बनता था। आपको लग भग ८ मास तक पसली में दर्द रहा। बहुत कुछ चिकित्सा की गई किन्तु कुछ आराम न हुवा। अस्तु-आपने साधुओं से कह दिया कि मेरा आयुष्कर्म अब थोड़ा ही बाकी है। अब मैं अधिक औषधियों की झंझट में नहीं पड़ना चाहता। अब मेरा समय पूर्व संचित क्रिया काण्ड को शुद्ध करने का है। अतः मुझे वृहदालोयणा आदि आलोचना पाठ सुनाओ। अबतो यही मेरी औषधी है। यही अमर जीवन बनाने वाली रसायन है' आज्ञा पाते ही साधुओं ने आलोचना पाठ सुनाना शुरु कर दिया। इस वर्ष का अर्थात् १९७७का चतुर्मास बड़ोत हुवा। खेदहै यह आपका अन्तिम चतुर्मास था। आपको व्याधितो पहले से चालू ही थी। पर अब इसने और भी भीषण रूप धारण कर लिया। पाचनशक्ति आपकी अतीव क्षीण होगई। अस्तु- पहला श्रावण बीत चुका था- दूसरा श्रावण आकाश में काले बादलों का जमघट करता हुवा कोई मूक- सूचना देरहा था। कृष्णपक्ष कृष्णता फैलाता हुवा

कुछ दूसरी कृष्णता फैलाने का गुप्त संकेत कर रहाथा। सुतिथि एकादशी भी बैरी बन बैठी थी। मंगलवार अपनी असली क्रूरता दिखा रहा था। मुनि श्री चारों आहार का प्रत्याख्यान कर संथारा किये मृत्यु से निडर बने हुए जिन चरणों से ध्यान लगाए बैठे थे। दूर दूर से यात्री दर्शनार्थ इकट्ठे होरहे थे। इसी समय दिनके पौने ग्यारह बजे इस मैले तन चौले को छोड़कर आप मुनि श्री (मंगलसेनजी) संथारा पूर्ण कर स्वर्ग वासी बन गए, संसार मे अपना एक आदर्श छोड़ गए। किं बहुना- बड़ी धूम धाम के साथ लग भग तीन- चार हजार यात्रियों की उपस्थिति मे चन्दन की चिता में अग्नि संस्कार किया।

मुनिवर्य ! आज आप विद्यमान नहीं है। परन्तु आपकी कमनीय-कीर्ति ज्योंकी त्यों विद्यमान है। आपने सिंह की तरह चारित्र लिया और अन्ततक उसको सिंह की तरह ही पालन किया ऐसी आत्मा कोई बिरली ही होती है जो अपने और दूसरों के लोक – परलोक को सुन्दर बनाती है। आपका जीवन वह आदर्श जीवन है जो गिरी हुयी आत्मा ओं को ऊँचा उठाने की शक्ति रखता है। आप जैसे महात्माओं के आदर्श पर चल कर ही हम जैसे पामर प्राणी अपनी जीवन नैया को सुख पूर्वक काम क्रोध आदि भयंकर भँवरों से बचाते हुए संसार सागर के काँठे एकदिन ना एकदिन लगा देंगे। आप श्री ने हमारे पर वे अद्वितीय उपकार किये हैं जिनको हम कदापि नहीं भूल सकते। जब तक सभ्य संसार मे कृतज्ञ पुरुष जीते रहेंगे तब तक आपके इन महान उपकारों की पवित्रस्मृति पापकी कालिमा को दूर करती रहेगी। आपने अपने जीवन में अनेक उपकारी काम किये हैं जो एक से

एक अनूठे हैं परन्तु-आपने जो कठिन परिश्रम करके चरित्र नायक को इस प्रकार योग्य बना दिया है। यह आपका काम सब कामों से महत्व का काम है। इस काम के करने में आपने शिष्य के प्रति गुरु का जो कर्तव्य होता है उसको अथ से इति तक बड़ी शान के साथ पूरा कर दिया है। आज आपके यही योग्य बनाए हुए शिष्य चरित्र नायक आपकी कीर्ति में वृद्धि कर रहे हैं।

आज आप श्री के शिष्य प्रशिष्यों की तालिका इस प्रकार है-

- पूज्यपाद श्री मंगलसेन जी महाराज
  - श्री रघुनाथदासजी
    - श्री ज्ञानचन्द्र जी
      - कुशालचन्द्र
  - आचार्य श्री मोतीराम जी (चरित्रनायक)
    - श्री पृथ्वीचन्द्र जी
      - अमरचन्द्र
      - अमोलकचन्द्र

इति पूर्व खण्डम्

—:o:—

# ❀ आदर्श-जीवन ❀

## उत्तर-खण्डम्

"अनु गन्तुं सतां वर्त्म, कृत्स्नं यदि न शक्यते
स्वल्प मप्यनु गन्तव्यं, मार्गस्थो नाव सीदति"

यदि तुम सत्पुरुषों के मार्गपर सम्पूर्णतया नहीं चल सकते हो तो, कोई बात नहीं। थोडाही चलो। थोड़ा थोड़ा चलते रहने पर भी, तुम एक दिन सानन्द स्वाभीष्ट स्थान पर पहुँच जावोगे। क्यों कि-जो मार्गपर चलता रहताहै वह कभी दुःखित नहीं होता।

# प्रकरण पहिला

## वंश परिचय और जन्म

तस्यैवाभ्युदयो भूयाद्‌ भानोर्यस्योदये सति
विकास भाजो जायन्ते गुणिनः कमला कराः
"श्रीहर्षः"

प्रिय पाठक वृन्द! इस पवित्र भारत-भूमि पर राजपूताना एक सुप्रसिद्ध देश है। यह वह देश है-जिस के वीरों की वीर-कथाएँ समस्त देशों में गाई जाती हैं। यह वह देश है-जिसने महाराजा वीरपुंगव मानसिंह को जन्म देकर समग्र-संसार के सामने भारत-माता का मस्तक ऊँचा करदिया है। यह वह देशहै-जिसने पवित्र-धर्म की रक्षा के लिये अपने अनगिनत वीरपुत्रों को हँसतेर बलि वेदीपर चढा दिया है। राजपूताना की भूमि अधिकतर बड़े-बड़े पहाड़ों, बड़े-बडे बालू रेता के टीबों, एवं बड़े-बड़े सुन-सान जंगलों से घिरी हुई है। इसके गगन-चुम्बी ऊँचे-ऊँचे पहाड़, इसके अदम्य गौरव के लिये; इसके दूर-दूर तक फैले हुए ऊँचेर टीबे, इसके अपार धन वैभव के लिये, इसके भयावह कंटकाकीर्ण सुन सान जंगल, इसकी शत्रुओं के प्रति भयंकरता के लिये दिव्य संकेत कर रहे हैं।

राजपूताना, वास्तव में राजपूताना ही है। राजपूताना अपने रण रंगी राजपूतों की वह याद दिलाता है जिसे याद करतेही बनता है। राजपूताना की पवित्र भूमिने समय समय पर अनेक कर्त्तव्य बीर पुरुष पुंगवपैदा किये हैं। संसार में कोई देश कर्म वीरों के लिये प्रख्यात है तो कोई देश धर्म वीरों के लिये प्रख्यात है। परन्तु आश्चर्य है कि–राजपूताना अपने कर्मवीर–धर्मवीर दोनों के लिये प्रख्यात है। पाठको! आपके चरित्र नायक को जन्म देने वाली भी यही राजपूताना की जग जानीती पवित्र भूमि है।

राजपूताना की इसी पवित्र भूमिपर एक छोटा सा शहर "सिंघाणा" है। यह पहाड़ के नीचे पहाड़ से लगा हुवा ही बसा हुवा है। कहने वाले लोग–इसकी पहले की हालत बहुत अच्छी बतलाते हैं। परन्तु, इस समय इसकी हालत कुछ अच्छी नहीं गिनी जाती। अब यह शहर बहुत ही पुराना हो चला है। अपनी प्राचीनता का पता यह देखने वाले को देखते ही दे डालता है। इस समय यह जयपुर नरेश के अग्रगण्य सामन्त, खेतड़ी नरेश की शासकता में है। प्रिय पाठको! यही सिंघाणा शहर चरित्र नायक जी की जन्म भूमि है।

यहाँ अग्रवाल बंशके गोयल गोत्री रामधन नामक एक सद्गृहस्थ रहते थे। आप बड़ेही सरल स्वभावी गृहस्थ थे। किसी की निन्दा–बुराई करना आप अपनी दृष्टि में बहुत ही बुरा समझते थे। आप में किसी भी प्रकार का दुर्व्यसन नहीं था। आपका जीवन पुष्प सदाचार की सुगन्ध से सुगन्धित था। आप प्रारंभसे ही ( बचपनसे ही ) संत महात्माओं के तथा अन्य

सज्जनों के सत्संग के प्रेमी थे। आप जैन शासन के श्रद्धालु सेवक थे। आपकी जैन शासन पर असीम श्रद्धा थी। आपकी गृहस्थ सम्बन्धी स्थिति साधारण थी। आप अपने परिवार का पालन ब्याज तथा दुकान की आय से किया करते थे। आपकी अपनी जाति में अच्छी मान्यता थी। किं बहुना, आप गृहस्थ के सभी योग्य गुणों से समलंकृत थे।

श्रीमान् रामधनजी की धर्मपत्नी का नाम कौशाम्बी बाई-था। यह भी एक शीलवती सदाचारिणी महिला थी। शान्ति एवं शान्ति की साक्षात् मूर्ति थी। इनका चित्त उदार था। जो भी कोई भिक्षुक द्वार पर आता उसे यह अपने घर की स्थिति के अनुसार कुछ न कुछ हाँ में ही उत्तर देती। नहीं कहते हुए इनके हृदय में एक स्वाभाविक ही संकोच होता था। यह भी पति की-ज्यों जैन धर्म पर पूरी-पूरी श्रद्धा रखती थी।

पति-पत्नी दोनों परस्पर प्रेम से अपने गृहस्थ जीवन को सुन्दर बना रहे थे। परस्पर दोनों में किसी प्रकार का मनोमालिन्य न था। योग्य पत्नी के कारण पतिदेव को किसी प्रकार की घरकी तरफ़ से चिन्ता नहीं रहती थी। घर का अपना सब काम सौभाग्यवती कौशाम्बी पेन टंच रक्खा करती थी। वास्तव-में जिसे गृहस्थी का घर कहना चाहिये यह वही घर था। योग्य पति-पत्नी ने घरको स्वर्ग से भी सुन्दर बना रक्खा था।

पाठको! आपके चरित्र नायक के यही उपर्युक्त सौभाग्य शाली सद्गुणी माता पिता थे। इन्हीं माता पिता के स्वर्गसम सुन्दर गृह में विक्रमाब्द १९२५ ज्येष्ठ कृष्णा सप्तमी के दिन शुभ लग्न में चरित्र नायक का जन्म हुवा।

चरित्र नायक जी चार बहन भाई थे। दो बहने थी जो चरित्र नायक से बड़ी थी। एक भाई था जो कि आप (चरित्र नायक जी) से छोटा था।

## प्रकरण दूसरा

## बाल्य-काल

बालक की आंखों में संस्कारों का पुण्य छिपा
रवि के बचपन में भी उसका रहता है तात्पर्य छिपा
"एक कवि हृदय"

मनुष्य के समस्त जीवन काल मे बाल्यकाल अपना एक अलग ही स्थान रखता है। इसकी तुलना किसी भी काल में नहीं हो सकती। यह वह काल है— जहाँ से मनुष्य में मनुष्यत्व का श्रीगणेश होता है। मनुष्य के भविष्य का ठीक—ठीक पता बाल्य काल पहिले सेही बतला देता है। संसार में जहाँ- जहाँ जो-जो भी नामी पुरुष हुए हैं। चाहे वे किसी भी रूप में हुए हों। उन सबके जीवन का ऐतिहासिक सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करने पर उनका बाल्य काल एक विचित्र ही रहस्य का भरा हुवा दिखलाई देता है। महाभारत इसका एकही उदाहरण है। महाभारत के सुनने वाले और पढने वाले विचार लें कि —एक दुर्योधन का बाल्यकाल कैसा था, और वह अन्ततक कैसा रहा। दूसरा

युधिष्ठिर का बाल्यकाल कैसा था, और वह अन्ततक कैसा रहा। मनुष्य ही का क्यों—प्रकृति के लीला क्षेत्र में सभी का शैशव-काल भविष्य का सूचक रहता है। एक वृक्ष के उगते हुए अंकुर कोही लीजिये। वह अपने रक्षक माली को बतला देता है कि, मैं बड़ा बनकर कैसा रहूँगा? मेरे फल लगेंगे या नहीं। यदि लगेंगे तो अधिक लगें या कम ही। और वे फल मधुरता में कितनी न्यूनाधिकता रक्खेंगे। यह बाल्यकाल का बँधा हुवा प्रकृति-कृत नियम है। क्या हुवा जो कोई एक आधा उदाहरण इस नियम के विरुद्ध निकल पड़े। वास्तव में देखा जाय तो उस विरुद्धता में भी इसी अटल नियम की छाँया मालूम देगी।

अस्तु- इसी उपरि लिखित नियम के अनुसार चरित्रनायकजी का बाल्यकाल भी भविष्य का सूचक बना। चरित्रनायक जी का बाल्यकाल एक अच्छे ढंग का रहा। यह अच्छा ढंग कुछ धन-वैभव सम्बन्धी सुखों के ठाठ-बाट की अपेक्षा नहीं रखता परन्तु-सच्चरित्रता के ठाठ-बाठ की अपेक्षा रखता है। चरित्र-नायक की शैशवावस्था की सौम्य मूर्ति देखने वालों के हृदयों को प्रेमार्द्र कर देती थी। देखने वाला यही चाहता कि"- मैं इस प्रसन्न शिशु को आये दिन देखता ही रहूँ। पाठको! यह मनो-मोहकता का गुण किसी किसी शिशु में ही होता है। प्रत्येक शिशु में नहीं। "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" वाली कहावत सर्वांश में ठीक निकली। तभी तो चरित्रनायक जी साधु बनगए। गृहस्थ में अनेक शत्रु-मित्र सम्बन्धी झंझटों के कारण यह सर्व प्रियता प्राप्त करनी कठिन थी। साधु पद ही वास्तव में सर्व प्रिय पद है।

**सत्यता**-पाठको! बाल्य युग क्रीडा युग माना जाता है। अस्तु, चरित्रनायक भी अपने समवयस्क बालकों के साथ यथा समय खेला करते थे। चरित्र नायक के प्रत्येक खेल में सत्यता का भाव रहता था। खेल के जय पराजय को आप सत्यता के साथ झटपट स्वीकार कर लेते थे। झूठी कानूनें लगाकर विजयी बनना आपको अभीष्ट न था। झूठे एवं घमँडी बालकों से आप जान-बूझ कर अलहदा रहतेथे।

जब कोई धनी बालक गर्ज कर ग़रीब बालकों को धमकाता तो आप सोचते कि " यह कैसा बालक है। इन बिचारे ग़रीब बालकों को इस प्रकार क्यों लताड़रहा है? क्या इन बालकों के हृदय नहीं है? क्या ये अपने मनमें दुःखी न होते होंगे? ऐसातो नहीं चाहिये। हम सब साथी एकसां है। खेल में धनी और निर्धनी की कोई अपेक्षा नहीं "। आप ऐसा सोच कर ही नहीं रह जाते। आप अपने इन अभिप्रायों को प्रगट करते और ग़रीब बालकों का पक्ष भी लेते।

**विनय**-चरित्र नायक के हृदय में बड़ोंके प्रति सन्मान का भाव था। माता पिता जो आज्ञा देते आप उसी के अनुकूल चलते। आस पास पड़ोस के वृद्ध मनुष्यों की सेवा करने का आपको अतीव प्रेम था। वृद्धों की आशीष सुनने का आप को एक चसका पड़गया था। वास्तव में देखें तो इस चसके में जो आनंद है वह कहीं है ही नहीं। जिस समय भारत के समस्त बाल कों को यह चसका लगजायगा, बस उसी समय यह भारत संसार में चम-चमा उठेगा। संसार में जो कुछ है वह वृद्धों की सेवा ही है।

श्री कृष्णचन्द्र जी भी महाभारत युद्ध में अर्जुन को फटकार बताते हुए यही कहते हैं। "न वृद्धा सेविता त्वया" अरे अर्जुन! तू अबतक सच मुच परले सिरे का मूर्ख ही रहा। मैं समझताहूँ कि तूने कभी वृद्धोंकी सेवा नहीं की। यदि तू वृद्धों की सेवा करता तो कभी ऐसा नहीं कहता।

सादगी—चरित्र नायक सादगी पसन्द थे। क्या खाने में, क्या पीने में, क्या पहिरने में सब कामों में आपकी सादगी ही सादगी थी। आप अन्य बालकों की तरह खाने पीने पहरने के शोकीन न थे। यह सादगी एक महान गुण है। यह गुण किसी किसी की हृदय भूमि में ही अंकुरित होता है। इस सादगी के महान गुणने ही आगे चलकर चरित्र नायक को साधु पद पर सुशोभित किया।

दयालुता—चरित्र नायक का हृदय बाल्यकाल से ही दयार्द्र था। आपका हृदय दुःखी को देखकर उसी समय दुःखित हो जाया करता था। आप कभी किसी को हँसी में भी कष्ट देना अच्छा नहीं समझते थे। घर पर जब कोई भूखा अपाहिज मांगने के लिये आता तो आप झट पट माता से चीज लेकर अपने हाथों से उन्हें देते। बुभुक्षतों की करुणा भरी आवाज को सुन कर आपका हृदय द्रवी भूत होजाता था।

सरलता—चरित्र नायक में एक और सबसे सुन्दर गुण है। जो चरित्र नायक के हृदय में बाल्यकाल से ही स्थान पाया हुवा है। जिसका नाम सरलता है। चरित्र नायक बाल्यकाल से ही बड़े सरल स्वभावी हैं। जिसे दुनियाँ चालाकी

कहती है वह आपमें प्रारंभ से ही नहीं है। आपकी सरलता बाल्यकाल से विकसित होनी प्रारंभ हुई, जो आज इस रूप में सुविकसित हो रही है। जैन अजैन जोभी कोई चरित्रनायक के दर्शन करता है। वह चरित्रनायक जी की सरलता की प्रसंशा किये बिना नहीं रहता।

प्रिय पाठको! आपके चरित्रनायक जी बाल्यकाल से ही इस प्रकार विचार शील सच्चरित्री बनते हुए आज जो इस सच्चरित्रता के ऊंचे पद-साधु पद पर पहुंचे हैं, इसमें मूल कारण क्या है? यह आप अभी नहीं जान सके होंगे। लीजिये, यह मूल कारण है सौजन्य संपन्न माता की समय समय पर मिलती रहने वाली सौजन्य पूर्ण शिक्षाएं-क्रियाएं। बालक स्वयं सुधर तथा बिगड़ नहीं सकता। बालक को सुधारने वाली तथा बिगाड़ने वाली हमेशां उसकी माता ही होती है। दुनियाँ के इतिहस उठा कर देखें, संसार में जो जो महापुरुष हुए हैं, वे सब अपनी माता की कृपा से ही महापुरुष बने हैं। कौशल्या ने राम को, सुमित्रा, ने लक्ष्मण को, गंगा ने भीष्म को, कुन्ती ने पाण्डवों को, सुभद्रा ने अभिमन्यु को शिक्षा द्वारा अलौकिक-(अद्वितीय) करके संसार में पितृपक्ष से मातृपक्ष का पलड़ा भरी कर दिया है। संसार प्रसिद्ध वीर नेपोलियन-"जब कभी कोई प्रसंग आता तो कहा करता मैं जैसा कुछ हूं। मुझे मेरी माता ने बनाया है। बालक के कोमल हृदय पर सब से अधिक जिस व्यक्ति का प्रभाव पड़ता है वह माता है। सदाचारकी शिक्षा का प्रारंभ गृह पाठशाला से होता है। इस शाला की अध्यापिका कौन होती है? माता। बस, इसी अध्यापिका की बाल्यावस्था में हृदय पलट पर पड़ी

हुई छाया आमरण वैसी ही बनी रहती है। लाख उद्योग करने पर-भी फिर वह मिटाए नहीं मिटती। पाठको! इस अध्यापिका की शिक्षा किताबी नहीं, अमली होती है। किताबी शिक्षावाला अध्यापक जो शिक्षा वर्षों में बड़ी कड़ी महीनत के बाद देता है, वही शिक्षा यह अमली शिक्षावाली अध्यापिका एक पल में ही दे डालती है। बालक एक अनुकरण शील है। वह जैसा देखता है, वैसा ही करने लग जाता है। उस वक्त उसे हिताहित का विचार नहीं होता। हिताहित का विचार तो उसे फिर आना शुरू होता है। बालक एक मूक शक्ति है। उसको जिस किसी रूप में व्यक्त करना माता का काम है। चाहे वह अच्छे रूप में व्यक्त करे। चाहे वे बुरे रूप में व्यक्त करे, संसार में वह कौन सा गुण है जो बच्चों में नहीं पाया जाता। बालक के गुणों के लिये सबको संबोधित करता हुवा एक कवि कहता है:-

"शैव भक्ति जैनी दया मुसलमान विश्वास
जो चाहो सो देखलो आकर शिशु के पास"

अहा! कवि कहता है पर कैसे खुल्लम खुला कहता है, कि अयि शिव भक्तो। अयि जैनियों। अयि मुसलमानो! तुम्हें अपनी भक्ति दया और विश्वास का बहुत अभिमान है। तुम समझ-ते हो कि, ये गुण बस हमारे ही में हैं ओर किसी में नही हैं।

परन्तु-मैं तुम्हें यह चेलेंज दिये देता हूं कि यह तुम्हारा अभिमान सारा का सारा झूंठा है। यदि तुम्हें गर्व हो तो तुम जो कुछ देखना चाहो, चले आवो। ये तुम्हारी तीनों चीजें तुमसे भी कहीं बढ़ चढ़कर एक नन्हासा प्रसन्न शिशु लिये बैठा है। अस्तु,

पाठ को! बतावो ऐसा शिशु कौन सा है? हाँ तुम नहीं बता सकोगे। सुनों, यह शिशु, एकसुघड़-एकचतुर माता का प्यारा शिशु है। सुघड़ माता के शिशु में ही ये गुण मिल सकते हैं, अन्य में नहीं।

खेद है, कि आजकल के चरित्र-हीन शिशु देश को बद नाम कर रहे हैं,। देश की मिट्टी पलीद कर रहे हैं। आज ये जहाँ जाते हैं वहीं से धक्के खाकर आते हैं। कहीं भी इनका आदर सत्कार नहीं होता। परंतु-करा क्या जाय? केवल खेद करके ही रह जाना पड़ता है। यदि वास्तव में देखें तो बिचारे शिशु-ओं का है भी क्या दोष? जब कि उनकी माताएँ ही माताएँ नहीं रही हैं। जब भारत भूमि की माताएँ अपने कर्तव्य का पालन करेंगी तभी भारत का बेड़ा पार होगा, तभी भारत उन्नति शिखर पर आरूढ होगा।

## सुधा—धारा

(१) जो न तो किसी राग रखने वालेपर राग रखता है और न किसी द्वेष रखने वालेपर द्वेष रखता है, वही सच्चा महापुरुष है।

(२) कल्याणाभिलाषी मनुष्य को लज्जा, दया, संयम, और ब्रह्मचर्य पर पूर्ण दृढ रहना चाहिये।

(३) साधुओं! यदि साधुता प्राप्त करनी है तो पृथ्वी के समान सहनशील बन जावो।

"भगवान् महावीर"

## प्रकरण तीसरा

# शिक्षा और पितृवियोग

शिक्षा बिनासंसार में गौरव कहो किसको मिला
निर्गन्ध किंशुक पुष्प को यहां कोन पूछे है भला
"शिक्षा प्रेमी"

मनुष्य के जीवन को सच-मुच जीवन बनाने वाली एक वस्तु है, जिसे शिक्षा कहते हैं। शिक्षा वह है जो मनुष्य के नाम का संसार के कोने कोने में गुंजाती है। शिक्षा वह है जो मनुष्य को सदा के लिये दुर्गुणों से बचाती है। शिक्षा वह है जो मनुष्य को हित अहित कार्य का पारखी बनाती है। शिक्षा वह है जो मनुष्य को मनुष्य से देव, देव से महादेव बनाती है। बिना सुन्दर शिक्षा के मनुष्य वास्तविक मनुष्य नहीं बन सकता। शिक्षा विहीन मनुष्य देखने में मनुष्य दिखलाई देते हैं। परन्तु, हैं व वास्तव में विना सींग-पूंछ के पशु। अशिक्षित मनुष्य की जीवन यात्रा सदा कष्ट में ही बीतती है। उसे सुखका आभास स्वप्न में भी नहीं होता। अशिक्षित मनुष्य न घरमें बैठने के कामका न बाहिर बैठने के कामका। घरमें घरके आदमी उसपर बात बात पर झाड़ पछाड़ फेंक ते रहते हैं, तो बाहिर बाहिर वाले, उसकी बात बात में मिट्टी पलीद करते रहते हैं। अशिक्षित पंच पंचायत में, सभा सोसाइटी में, शिक्षित मित्र मण्डली में

बैठने का मुंह नहीं रखता। वह जहां जाता है वहाँ ही जारज की तरह उपहसित होता है।

अस्तु—माता पिताओं का प्रधान कर्तव्य है कि वे अपनी संतान को शिक्षित बनावें। माता पिताओं का कर्तव्य कुछ झूठा लाड़-चाव करके संतान को लंठराज ( मूर्ख ) ही रखना नहीं है। लाड़—चाव करने के अवसर तो अन्य बहुत हैं। शिक्षा के अवसर पर लाड़—चाव करना माता पिता की बुद्धिमत्ता नहीं, बल्कि मूर्खता है जिसकी कुछ सीमा नहीं। संतान को अशिक्षित रखने वाले माता पिता वस्तुतः माता पिता नहीं हैं। वे तो छुपे हुए अपनी संतान के कट्टर शत्रु हैं, जो जन्म भर के लिये उसे दुःख के खारी समुद्र में फैंक देते हैं।

अस्तु—पाठको! आपके चरित्रनायक के मात पिता कुछ नाम के माता पिता नहीं थे। वो एक सच्चे माता पिता थे उनके विचार उन्नत थे। वो संतति शिक्षा के पूरे पक्षपाती थे। ज्ञान प्रधान जैन धर्म की शिक्षा से उनके वास्तविक माता पिता के हृदय बने थे। उन्होंने अपने शिक्षा सम्बन्धी कर्तव्य का ध्यान रक्खा। जब चरित्रनायक जी ने सातवे वर्ष में पदार्पण किया तो पिता ने इन्हें एक सुयोग्य, सच्चरित्री शिक्षक की पाठशाला में पढने बैठा दिया। अब चरित्रनायक मन लगा कर विद्याध्ययन करने लगे। आप पाठशाला में सबसे पहिले जाते और सबसे पीछे आते। बहुत से लड़के पाठशाला में उधम मचाया करते हैं। प्रतिदिन अध्यापक को क्रोध दिलाया करते हैं। परन्तु—आप इन दोष की कालिमा से अलग थे। आप अलहदा बैठे हुए अपनी पाठ्य पुस्तक के पाठों को हृदयगत करते

रहते थे। इस प्रकार विद्याध्ययन करते हुए चरित्र नायक को सातवाँ वर्ष समाप्त होकर आठवाँ वर्ष प्रारंभ ही हुवा था कि, काल की गति कुटिल है। यह रंग में भंग किये बिना चैन नहीं पाता।

अस्तु-अचानकही चरित्र नायकके पिताका देहान्त होगया। जो पिता पुत्र के सुखमय जीवन पर दृष्टि लगाये हुए था वही अचानक काल के झपाटे में दुनियां से चल बसा। तभी तो एक मस्ताना कवि ऐसे ही प्रसंग पर कह उठा है कि - "अपने मन कछु और है कर्ता के कछु और"। पिता श्री के देहान्त-से माता और पुत्र के दुःख की सीमा न रही। सब आशाओं पर पानी फिरगया। सारे घर में उदासी छागई। दुकान-दारी तथा लेन देन का काम सब चोपट होगया। रामधनजी का दिया हुवा जो जिसमें था वह उसी में रह गया। किसी ने कुछ न दिया। विचारी माता ने हिम्मत से काम लिया। उसने करड़ा दिल करके पुत्रों को सान्त्वना दी। जो कुछ घर में था या दुकान में था उसेही संभाल कर घर का काम चलाना शुरू किया। माताजी का चर्खे से पहिले से ही प्रेम था। वह इस घटना से पहले भी समय मिलने पर चर्खा काता करती थी। किन्तु—अवतो वह दीनोद्धारक चर्खे की और भी मन लगाकर उपासना करने लगी। आर्थिक आपत्ति को चकना चूर करने वाला चर्खा चरख चूँ—चरख चूँ करता हुवा चरित्र नायकजी की माता के हाथ के इशारे पर तेजी से घूमने लगा। माताजी चर्खा कातती जाती और धीमे—धीमे स्वर से:—

"श्री आदिनाथ अजित संभव सुमरूँ श्री अभिनदना
चरण जिनजी के सीसधर धर करूँजी पल पल बंदना"

यह चोबीसी पद्य गाती जाती, इस प्रकार चरखे के धँधे में माता जी का मन का मन लगा रहता और आर्थिक कार्य भी पूरा होता रहता। अधिक क्या, सुचतुर माता सुख पूर्वक कुटुम्ब का पालन करने लगी। चरित्र नायक का इस दुःखद प्रसङ्ग पर पाठशाला जाना छूट गया था। परन्तु, अब फिर माता इन्हें पाठशाला भेजने लगी। चरित्र नायक भी फिर पाठशाला आने जान लगे और मन लगाकर पढने लगे।

परन्तु—अब पहले वाला मन कहाँ था। जिस मन में पहिले सुख शान्ति का सुधा-सिन्धु लहरें लिया करता था, अब उसी मनमें मरुस्थल का दृश्य दिखाई देता था। अब मनमें दुःख की भयंकर आँधी खें खा रही थी। अस्तु चरित्र नायक की शिक्षा एक साधारण शिक्षा ही रही। शिक्षा में आप आगे न बढ सके। आपका अभ्यास बनियाई, लिपि, गणित, हिसाब किताब, और मामूली हिन्दी भाषा तक ही रहा। आपने हिन्दी-पुस्तकें पढने की तथा हिन्दी में पत्र आदि लिखने की योग्यता प्राप्त की। आप की शिक्षा की जो उन्नती हुई वह संयमी होने के बाद ही हुई। इस संयमी होने के बाद की शिक्षा का वर्णन आगे कहीं किया जायगा।

## प्रकरण चोथा

# वैराग्य और मातृ वियोग

सर्व वस्तु भयान्वितं भुविनृणां वैराग्य मेवा भयम्

"भर्तृ हरि"

इस विषमय नश्वर संसार में वैराग्य ही वास्तव में अमृत-बिन्दु है। वैराग्य के समान सुख शान्ति का देने वाला और कोई है ही नहीं। वैराग्य मनुष्य को पाप पथ से हटाकर पुण्य पथ पर अग्रसर करता है। वैराग्य, दुःख दावानल की भीषण ज्वालाओं से जलते हुए प्राणियों की रक्षा करता है। वैराग्य, आशा तृष्णा की वैतरणी नदी में डूबते हुए संसारी जीवों का उद्धार करता है।

मनुष्य के जीवन में वैराग्य एक विचित्र क्रान्ति ला देता है। वैराग्य, स्वर्ण सिंहासनों पर बैठने वाले बड़े-बड़े चक्रवर्ती सम्राटों को पहाड़ की ऊँची चोटी पर कठिन शिलाओं पर बैठा देता है। वैराग्य, पुष्प शय्या पर मखमली बिछोना बिछा कर सोने वाले मनुष्यों को सुनसान जंगल में ऊँची नीची, खरदरी कंटका कीर्ण भूमि पर सानन्द सुला देता है। वैराग्य, प्रगट में महा भयंकर दुःखों के होते हुए भी अन्तरहृदय को मारे आनंद के मस्त बनाए रखता है। अधिक क्या, वैराग्य की महिमा अपार है। इस

जड़ जिह्वा- इस जड़ लेखनी की क्या शक्ति जो वैराग्य की महिमा का पूरा-पूरा वर्णन कर सके। वैराग्य की महिमा को वैरागी का हृदय ही जानता है वह बचन से उसको व्यक्त नहीं कर सकता" "गूँगे का गुड़ है भगवान बाहिर भीतर एक समान"। हमारे शास्त्र कारों का कथन है कि जिस मनुष्य के हृदय में वैराग्य की प्रभा नहीं पड़ी वह वास्तव में मनुष्य ही नहीं है। वास्तव में मनुष्य-वास्तव में धन्य पुरुष वेही हैं जिनके पवित्र हृदय में वैराग्य गंगा की पवित्र धार फूंफाटा मारती हुई बहती रहती है।

अस्तु— पाठको! आपके चरित्र नायक भी इसी वैराग्य की कृपा सेही इस प्रकार धन्य पुरुष बने हैं। इसी वैराग्य नेही इनका लक्ष्य बदल कर इन्हें इस साधु रूप में लाकर खड़ा किया है। यदि इनके हृदय में वैराग्य का संचार न हुवा होता तो आज चरित्र नायक दर्शकों को इस रूप में न पाते। वैराग्य! तुम्हें धन्य है। तुमने चरित्र नायक के हृदय में प्रवेश करके क्या ही यह उपकारी कार्य किया है। अस्तु अब अधीर पाठकों को यह बताया जाता है कि चरित्र नायक की हृदय भूमि वैराग्य रंग से कब रंगनी शुरू हुई।

महाराजा विक्रमादित्य का चलाया हुवा विक्रम संवत् १९३३ चालू था। इस वर्ष अपने यहाँ किसी मुनि राज का चतुर्मास कराने के लिये चरित्र नायक की जन्म भूमि वाले जैन बंधुओं में प्रवल विचार हो रहा था। इसी समय जमना पार से बिहार करते हुए मुनि श्री मंगळसेनजी महाराज अचानक ही सिघाणे पधारे। श्रावक वर्ग में हर्ष का क्षीर समुद्र उमड़ पड़ा। बड़े आग्रह के साथ मुनि श्री से चतुर्मास की स्वीकृति ले ही ली।

अस्तु-मुनि श्री का चतुर्मास प्रारंभ हुवा। श्रावक वर्ग ने धर्म ध्यान करने में अपूर्व उत्साह का परिचय दिया, मुनि श्री के वैराग्य भरे उपदेशों को सुन सुन कर चरित्रनायक की माता के पतिशोक का आवेग क्षीण हुवा। चरित्र नायक जी की माता का ध्यान पहले से ही तपस्या की तरफ़ लगा हुवा था परन्तु, अब विशेष रूप से तपस्या की तरफ़ ध्यान लग गया। अब माता का ध्यान परजन्म सुधार ने की तरफ़ विशेष रूप से रहने लगा। पाठको! यहीं से चरित्रनायक के हृदय में भी परिवर्तन शुरू हुवा। चरित्रनायक, हरवक्त जब देखो तब मुनि श्री की सेवा में ही रहते। आपने मुनि श्री से सामायिकपाठ सीख कर सामायिक करनी शुरु की, आप कभी दया पालते तो कभी संवर करते। अधिक क्या आपने इस चतुर्मास में खूब ही धर्म ध्यान किया। अस्तु-"संसर्गजा दोष गुणा भवन्ति" की नीति काम कर गई। चरित्रनायक के मनोमन्दिर में वैराग्य की स्पष्ट तो नहीं-हाँ अस्पष्ट प्रभा पड़गई। आप का पितृदुःख दुःखित मन गुरु चरणों में ही वास्तविक सुख शान्ति का सदनुभव करने लगा। आप साधु बनकर गुरु सेवा करने के लिये लालायित हो उठे।

कभी-कभी प्रसङ्गवश चरित्रनायक अपने ये विचार माता श्री के सामने भी प्रगट करदेते। परन्तु-माता-हाँ बेटा तू साधु ज़रूर बनेगा। क्योंना, यह तेरी अवस्था ही साधु बनने की है। बस बावली बातें नहीं किया करते। साधुपना तेरे जैसे पाललें तो फिर साधुपना कोई चीज़ ही न रहै"। यह कह कर हँसी में टाल देती। चरित्रनायक कभी माता को दुःख न पहुँचे, इस दृष्टि से आगे न बढते हुए हँसकर मौन रह जाते।

अस्तु, इसप्रकार आनन्द के साथ धर्मध्यानकरते हुए चतुर्मास समाप्त हुवा। मुनि श्री विहार कर गये। मुनि श्री के विहार से सभी श्रावक वर्गमें उदासी छागई। किन्तु, सबसे अधिक उदासी चरित्रनायक के कोमल हृदय में थी। कुछ, दिन तो चरित्रनायक का मन बिल्कुल न लगा। हर दम गुरु चरणोंका ही ध्यान रहता। परन्तु — गुरु-चरणों के विहार के बाद दिन, रात्रि, सप्ताह, पक्ष, महिना क्रमशः अपनीरबारी पर आ आकर चले गए और चरित्रनायक की हृदयगत वैराग्य-भावना को कमज़ोर करते चले गए। ज्यों- ज्यों आगे-आगे समय लंबा बढता गया त्यों-त्यों चतुर्मास की स्मृति पीछे पड़ती चली गई। अस्तु-जब चरित्रनायक ने ग्यारहवां वर्ष समाप्त कर बारहवें वर्ष में पदार्पण किया, तब हृदय से वैराग्य की वह सुन्दर प्रभा बस लुप्त होने को ही थी।

अब माता चरित्रनायक को बिवाह सूत्र में बाँधने की फिक्र में थी। चरित्रनायक के मामा इसके लिये प्रयत्न कर रहे थे। एक जगह से सगाई की निश्चित बात चल रही थी। परन्तु, विधि की गति विचित्र है। उसे कोई नहीं जान सकता। मनुष्य करना कुछ चाहता है और होजाता कुछ है। सामान्य मनुष्य की तो हकीकत ही क्या है। संसार के बड़े-बड़े महा-पुरुषों की भी मन चाही न हुई। आखिर उन्हों ने भी विधि के आगे घुटने टेकही दिये।

एक दिन अयोध्या में उत्सव मनाया जारहा था। द्वार-द्वार पर मांगलिक बाजे बज रहे थे। महारानी कौशल्या मुक्त-हाथों से अमित धन राशि दान देरही थी। प्रजा में एक नयेही

उत्साह की लहर दौड़ रही थी। जगह-जगह उपासना मन्दिरों में सामुहिक रूप से उपासनाएँ की जारही थी। क्या था बस एक अजीब ही आनंद था। महाराजा रामचन्द्रजी को अयोध्या-के राज सिंहासन पर बैठाने की पूरी-पूरी तैय्यारियाँ हो रही थी। क्या राम, क्या राम के साथी, क्या दशरथ, क्या कौशल्या, क्या प्रजा सबकें सब आनंद सागर में गोते लगा रहे थे। ज़्यादह दिन बाक़ी नहीं थे। एक रात्रि बस एक रात्रि बीच में थी। प्रातः काल सूर्योदय होते ही राजतिलक होने का शुभ मुहूर्त निश्चित हो चुका था। परन्तु, विधि ऐसा होना नहीं चाहती थी वह कुछ और ही घड़ घड़ा कर तैयार कर रही थी। मनुष्यों की तैयारी में और उसकी तैयारी में रात दिन का अन्तर है। इस अन्तर को समझने वाले ही समझेंगे।

अस्तु—प्रातःकाल सूर्य को तो उदय होना ही था। वह उदय हुवा। किन्तु, वह आशावादियों के लिये कुछ आशा का सुखमय सँदेशा लेकर न आया। उसने उदय होते ही एकदम दुःखभरी निराशा की दुंदुभि बजादी। सारी प्रजा में एक दम हाहाकार मचता चला गया। महाराजा दशरथ मुर्च्छित हो हो कर बार बार कठिन धरती पर गिरने लगे। महारानी कौशल्या दीवारों से सिर दे दे कर मारने लगी। दास दासी सब मारे दुःख के चित्र लिखित से हो गए। अधिक क्या। सारी अयोध्या दुःख समुद्र की बाढ़ में अचानक ही नख शिख डूब गई। क्या हुवा? रत्नजटित स्वर्णमुकुट पहन कर स्वर्णसिंहासन पर बैठने वाले रामचन्द्र भिक्षुक—तपस्वी वेष में नंगेसिर नंगे पैरों निर्जनवनों के निवासी होकर अयोध्या से चल पड़े चलते हुए कह गए कि :—

"प्रातर्भवामि वसुधाधिप चक्रवर्ती, सोऽहं व्रजामि विपिने जटिलस्तपस्वी
यच्चिंतितं तदिह दूरतरं प्रयाति, यच्चेतसा न गणितं तदिहाभ्युपैति"

जो रामचन्द्र राजा होने की खुशी में मस्त हो रहा था। अरे अब वही मैं राम चन्द्र तुम्हारे सामने इस वेष में भयंकर बनोंमें चला जा रहा हूँ। अफसोस! जो कुछ मैंने सोचा था वहतो न जाने कहाँ गया और जिसका स्वप्न में भी कुछ खयाल न था वही यह तुम्हारी आँखों के सामने है। संसार में सब कहने के बलवान हैं करने में तो केवल एक विधि ही बलवान है। देखो इसके सामने यह पल भर में प्रलयका दृश्य दिखाने वाले मेरे वाहुदण्ड और धनुषबाण किसी काम के न रहे।

अस्तु, पाठको! यह रामायण की एक घटना ही नहीं, यदि आप देखें तो आप को इसी प्रकार सारा का सारा इतिहास ही विधि की विचित्रता से विचित्रित मिलेगा। अस्तु, चरित्र-नायक के लिये माता जो कुछ सोच रही थी उसमें विधि सहमत नहीं हुई। अचानक ही व्याधि ने माता को घेर लई! औष-धोपचार किया गया। परन्तु दिन प्रति दिन व्याधि बलवती ही होती चली गई। चरित्रनायक ने माता की खूबही सेवा की। परिचर्या की तरफ़ से माता के चित्त में किसी प्रकार ग्लानि नहीं आनेदी। आखिर वही हुवा जो विधिने सोचा था। विधि प्रेरित कराल काल पुत्र वत्सला माता को पुत्र के पास से-उठा लेगया, सब के देखते देखते माता पुत्र का सुखद संयोग दुःखद वियोग में बदल गया।

कालकी गति अबाधित है। इस की गति को कोई रोक नहीं

सकता। संसार के बड़े से बड़े वीर योद्धा इसके आगे हाथ जोड़ते चले गये। इसके आगे किसी की कुछ न चली। अतएव संसार असार है। इस में कुछ भी सार नहीं है। जो इस में सार देखते हैं वे बड़ी ही भयंकर भूल करते हैं। भला इस संसार में और तो क्या रहेगा? जिस पुतले पर मनुष्य हमेशां पूरा-पूरा भरोसा रखता है वही मृत्युका पैगाम आने पर कोरा टकासा जबाव देकर गिर पड़ता है। जिन्दगी क्षण भंगुर है। इसके उपर एक गुजराती कवी मनुष्य को सचेत करता हुवा कहता है।

१

रे शाने मदमन धरे जीव तूं जिंदगीनो
जाणी लेजे क्षणिक सुख नो खेल आ वीजलीनो
नीचे जातां चलित-ग्रहने वार शी लागवानी
तेवी रीते जन सहु पड़े कालना पास मांही

२

आवी ओलो जलधि-जलमां वेगथी नष्ट थाए
जोतां जोतां गगनतलमां बादली क्यां जणाए
जाये आवी मरण शरणे प्राणिओ एज रीते
माटे शाने मद मन धरे मानवी! तूं जरीए

३

लीला पत्रो बड़पर रह्या एक वारे छवाई
खुली आँखों मनहर घटा आम्रनी जे निहाली
तेतो आजे उभय स्थलमां आपज्यां रे खरीने
माटे शाने मद मन धरे मानवी! तूं ज़रीए

४

नाना मोटा गरीब सुखियां नीचने ऊंच भाई
मृत्यु केरी कठिन जाडमां जायछे रे चवाई
माटी साथे मट मली जई देह आ धूल था से
माटे शाने मद मन धरे मानवी ! तूं जरीए

अस्तु—माताके वियोग पर चरित्रनायक को बहुत कुछ दुःख हुवा परन्तु, विचार शील वैरागी चरित्रनायक ने इस दुःख को अधिक नहीं बढने दिया। संसार की अनित्यता का ज्ञान रखने वाले चरित्रनायक इस घटना से जैसे विचलित होने चाहियें थे वैसे विचलित न हुए।

एक विचार शील के लिए वास्तव में यह बात है भी ठीक: दुःख का अन्त दुःख करने से कभी नहीं होता। ज्यों-ज्यों अधिक—अधिक दुःख को अपनाते चले जावोगे, ज्यों-ज्यों दुःख की तरफ़ मन का झुकाव करते चले जावोगे त्यों—त्यों ही यह दुःख आगे-आगे अधिक अधिक बढता चला जायगा। इस प्रकार करने से सरसों के समान दुःख एक दिन सुमेरु के समान बन जाता है। अस्तु, दुःख पड़ने पर मनुष्य को हिम्मत से काम लेना चाहिये। अपने हृदय में यह ध्यान भी न लाना चाहिए कि मुझे दुःख है। जो सच्चे साहसी पुरुष हैं उनका दुःख कुछ नहीं कर सकता। साहसी पुरुषों के पास दुःख आता अवश्य है पर यह कुछ देर उसके इर्द गिर्द घूम घाम कर आपही दुःखित होकर लौट आता है। एक दृष्टि से देखें तो दुःख के बराबर संसार में कोई सुख ही नहीं है। यदि दुःख के आक्रमण को झेलने के लिये छाती में अदम्य धैर्य हो तो दुःख के आने पर हाय तोबा

मचानेवाले पुरुष कभी महापुरुष नहीं बन सकता। महापुरुष वही बन सकता है जो छाती ताने बराबर दुःखों को आक्रमण करने के लिये ललकारता है। यदि कभी दुःख के आक्रमण से हिरो जाते तो क्या आज भगवन महावीर, वैरागी बुद्ध, महाराजा रामचन्द्र, कर्मयोगी कृष्ण, महाबली पाण्डव, मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त, महाराणा प्रताप, वीर शिवाजी आदि युग प्रधान पुरुषों की कीर्ति कथा इस प्रकार गाई जाती? नहीं कभी नहीं। योंतो न मालूम संसार में कितनेक आदमी हो हो कर चले गए हैं। कौन किसको जानता है- कौन किसका नाम लेता है। यह दुनियाँ आनी जानी है, सब आने के समय पर आते हैं जाने के समय रोते पीटते चले जाते हैं। बस एक आकर वही नहीं जाता जो लगातार बिपत्ति वज्र के आघातपर आघात पड़ते रहने पर- भी हँस हँस कर अपनी कीर्ति कथा संसार में छोड़ जाता है।

पाठको! वस्तुनः दुःख कोई वस्तु है ही नहीं। यह तो एक चित्त की भ्रान्ति है जो मनुष्य को भ्रमित कर देती है। जो इस तरह भ्रमित होने से बचा-वह अन्त में मृत्यु राक्षसी के मूह में जाने से बचा। प्रसिद्ध सूफी मनसूर „ जब सूली पर चढा तब दर्शक मारे दुःख के दहाड़ मार मार कर रोते रहे, परन्तु, वह आत्माभिमानी वीर सूली पर सिंहासनासीन की तरह बैठा हुवा मरते दम तक खिलखिला कर हंसता रहा और चुटकियाँ बजा बजा कर "हक़ हक़ अनलहक़" ( ब्रह्मास्मि सोहं ) की आवाज़ मस्ती के साथ ज़ोर ज़ोर से लगाता रहा। अस्तु, यदि दुख कोई वस्तु है तो दर्शकों की तरह खुद मनसूर क्यों न रोया। वह क्यों सुखी की तरह हँसता रहा। पाठक, इस स्थल से दुःख कोई वस्तु नहीं

हैं" यह स्वर्ण वाक्य अपने हृदय पट पर अंकित करलें और फिर मन चाहे जहाँ फिरें स्वप्न में भी दुःख पास नहीं फटक सकेगा।

अस्तु—पाठक वृन्द! माता के देहान्त से चरित्रनायक की बाह्य सांसारिक क्षति तो पूरी पूरी हुई। परन्तु, "जो कुछ होता है वह ठीक ही होता है" इस सिद्धान्त के अनुसार वह वैराग्य की लुप्त होतीहुई प्रभा इस प्रसंग से फिर प्रस्फुरित हो उठी, यह महान अद्वितीय लाभ हुवा। अब आपका हृदय संसार से सब तरह उदासीन होगया। अब के चरित्रनायक ने चारित्र लेने-की सोलह आना पक्की ठानली। जब मामाकी व बहन की तरफ़-से विवाह के लिये ज़ोर दिया गया तो, आपने साफ नकारात्मक उत्तर दे दिया और कह दिया कि-"आप यह झगड़े बाज़ी न करें। मुझे अपनी मर्ज़ी के मुताबिक काम करने दें। मैं कोई पागल नहीं हूँ, जो इन क्षणिक सुखों के लिए अनंत दुःखों को निमंत्रण दे दूँ। जब माता जीवित थी तबतो मैं विवश था। माता को दुःखी करके संयम लेना मुझे ठीक न जँचता था। अतः दीक्षा की टाल मटोल होती गई। परन्तु, अब विधि ने मुझे अपने मनोऽनुकूल काम करने का अच्छा अवसर दे दिया है। अतएव सौ बातों की एक बात है मैंतो अब दुःखमय विवाह बंधन में न बँधकर सुखमय दीक्षा बंधन में बँधूँगा। आप प्रसन्नता से एतदर्थ आज्ञा दे दें"। मामा और बहन यह सुन कर स्तब्ध होगये, उन्होंने बहुत कुछ इधर उधर की बातें चला चलाकर समझाया बुझाया। संयम के एक से एक भयंकर कष्टों का वर्णन करके विचलित करना चाहा। परन्तु चरित्रनायक अपने प्रण पर

अटल रहे। आप, नाँ से हाँ करने में टस से मस न होसके।

अन्त में रोती हुई बहन ने कहा कि—भाई जल्दी क्यों करता है। देख, अभी तो माता का देहान्त हुआ है मुझे अभी माता का ही बहुत दुःख है। इस दुःख में तू अपनी तरफ़ से इस दुःख को इतना जल्दी तो न मिला। अभी कहाँ की पछेत होगई है– लेलेना पर अब लेगा किसके पास ? जिन गुरू से तुझे प्रेम है वह तो अब इस तरफ हैं नहीं। जब वे इस तरफ आवें तब तू अपनी बात देख बिचारना। ले मेरे पर क्यों तड़क भड़क कर रहा है मैंतो तुझे तब न रोकूँगी।

पाठको ! चरित्रनायक अपनी बड़ी बहन की बहुत लज्जा रखते थे, उसके सामने कभी हठ वाद नहीं करते थे। अतः बहन के उपर्युक्त बचनों को सुन कर पूज्य मंगलसेनजी महाराज के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए चरित्रनायक उस समय चुप हो गये और बहन के कथनानुसार अपनी बात पर डटे हुए रहने लगे।

उधर बहन अपनी समझ में थी कि, चलो इस समय तो बातटली। अब टली तो आगे के लिये भी टली ही रहेगी। तुरत ताज़ा बिचार में और पुराने विचार में यही एक फ़र्क़ है। चरित्र नायक की बहन बिल्कुल ठीक—

"क्षणेन लभ्यते यामो यामेन लभ्यते दिनम्
दिनेन लभ्यते कालः कालः कालो भविष्यति"

इस श्लोकपर चलरही थी। चरित्रनायक अपनी समझ में थे कि कोई बातनहीं। बहन से इस रूप में आज्ञा तो

मिलही गई। अब गुरु भी जब आवेंगे तब अपने विचार में सफलता प्राप्त करेंगे। इस बीच के विलम्ब में भी कल्याण की ही छाया छुपी हुई है। "श्रेयांसि बहु विघ्नानि" का महा वाक्य सफल हुए बिना नहीं रहता।

पाठको! उपर लिखित दोनों के विचारों में से अन्तमें किसके विचार सफल हुए इसके लिए अगला प्रकरण देखें, तथा इसी प्रकरण से यह सिद्धान्त नोट करलें कि "सफलता उसे ही मिलती है जो अपनी धुनका पक्का होता है"।

## सुधा—धारा

(१) जीवित किसी भी उपाय से जरा, व्याधि तथा मृत्यु से रहित नहीं हो सकता; अतः कल्याण की अभिलाषा रखने वाले मनुष्यों को ज़राभी प्रमाद नहीं करना चाहिए। "जरा से घिरे हुए का रक्षण नहीं" यह अवश्य जानलेना चाहिए। भला प्रमत्त, असंयम शील और हिंसक लोक किस प्रकार अपनी तथा दूसरे की रक्षा कर सकते हैं?

(२) जो मनुष्य दुर्बुद्धि से पाप कर्म कर धन पैदा करते हैं वे वैर युक्त होकर नरक के मार्गपर जाते हैं।

"भगवान महावीर"

## प्रकरण ५ वाँ

# मुनि – पद

बिषयों की आशा नहीं जिनको साम्य-भाव धन रखते हैं
निज पर के हित साधन में जो निश दिन तत्पर रहते हैं
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या विना खेद जो करते हैं
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के दुःख समूह को हरते हैं

"युगबीर"

प्रिय पाठको! समय को जाते देर नहीं लगती। गंगा के जल प्रवाह के समान समय बड़ी तीव्रगति से चलता रहता है। संसार में सब की गति में विकृति आजाती है। किन्तु, समय की गति में कभी विकृति नहीं आती। समय की गति तो सदा अविकृत ही रहती है।

अस्तु, दिन पर दिन, पक्ष पर पक्ष, महिने पर महिने, वर्ष पर बर्ष वीतते चले गये। परन्तु, चरित्रनायक को जिन गुरु-देव के आगमन की हृदय से प्रतीक्षा थी वे न आए। चरित्र-नायक जी अधीर हो उठे। अब उन्हें घर में रहना एक भार रूप मालूम देने लगा। अब चरित्रनायक जी बहन के द्वारा किये गए वचन नियंत्रण को तोड़ना ही चाहते थे कि, पूज्य श्री मंगलसेनजी महाराज सहसा सिंघाणे पधारे। श्रावकवर्ग अति आन-

न्दित हुवा। किन्तु, सबसे अधिक हर्ष समुद्र जिन के हृदय में हिलोरें लेरहा था। वे थे चरित्रनायक। कुछ दिन ठहर कर मुनि श्री ने विहार कर दिया। चरित्रनायक जी भी गुरुवर्य के साथ हो लिये। गुरु श्री जमनापार वाले भाइयों की साग्रह वीनती पर जमनापार की तरफ़ आरहे थे। अतः गुरु श्री ने कुछ क्षेत्रों से आगे बढ़ जाने के बाद चरित्रनायक को जब इस लंबे विहार के, लिये कहा तो चरित्रनायकजी ने अपना विचार गुरु श्री के समक्ष स्पष्टतः प्रगट कर दिया। गुरु श्री चरित्रनायक की स्थिति को तो जानतेही थे। इन्हें सब कुछ मालूम ही था। अतः उन्हों-ने कहा तुम्हें इस कार्य से कोई रोकेगा तो नहीं? चरित्रनायकजी ने कहा गुरु देव! रोकेगा कौन? माता पिता का तो देहान्त हो ही चुका है। एक बहन रोकने वाली है। उसने मेरे से इस प्रकार कहा था। (जो कुछ कहाथा वह बता दिया) अत: मुझे स्पष्ट रूप से आज्ञा मिली हुई है। गुरु देवने कहा-फिर कोई बात नहीं है। श्रमण सूत्रकण्ठस्थ करें। समय पर देखा जायगा। चरित्रनायक जीने साधु प्रतिक्रमण कंठस्थ करना शुरू कर दिया। साथ-साथ अन्य नवतत्व आदि प्रकरण ग्रन्थ भी याद करने शुरू करदिए। जबतक गुरु देव विहार करते हुए जमनापार पहुंचे तब तक चरित्रनायक जी दीक्षित योग्य क्रियाओं के ज्ञाता हो चुके थे। अब चरित्रनायक साधु धर्म की कठिनाइयों का प्रत्यक्ष रूप से अनुभव कर चुके थे। अब चरित्रनायक जी बड़े उत्साह के साथ साधु वेष में क्षमा, दया, सत्यता आदि शस्त्रास्त्रों को लेकर कर्म-शत्रुओं से आदर्श युद्ध करने के लिये प्रस्तुत होचुके थे। अब कि चरित्रनायक जी बार बार गुरुदेव जी से कह कह कर दीक्षा के लिए शीघ्रता करने लगे, तब

गुरुदेव जी ने भी चरित्रनायक को साधु पदवी के योग्य जानकर इन्हें दीक्षा देनेका निश्चित विचार किया।

अब कुताना शहर के श्रावकों को चरित्रनायक के दीक्षा के विचार मालूम हुएतो श्रावक वर्गने गुरुदेव से बड़े आग्रह के साथ अपने यहाँ दीक्षा देनेकी स्वीकृति लेली। दीक्षा का बड़ा भारी आयोजन किया गया। दूर दूर तक दीक्षा महोत्सव पत्र भेजे गये। दीक्षा की यह सूचना सिंघाणे भी भेजदी। जमना पार तथा खादर के बहुत से भाई दीक्षा महोत्सव में संमिलित हुए। अस्तु—विक्रम संवत् १९४१ संसार को समय की अनित्यता का परिचय करा रहा था। वैशाख का महिना ग्रहराज सूर्य के तेज में परिवृद्धि कर रहा था। कृष्णपक्ष अपनी कालिमा से जनता को पापों से हमेशाँ दूर रहने का मूक सँदेशा दे रहा था। शुभ तिथि दशमी से दशविध मुनि धर्म के पालन से आत्मकल्याण का संकेत मिलरहा था। तेजस्वी रविवार आत्मा को अखण्डधामा बनाने के लिए प्रेरित कर रहा-था। मध्याह्न समय मनुष्यों को सुख दुःख में मध्यस्थ रहने-का कल्याण कारी गुप्त आदेश देरहा था। स्पष्ट शब्दों में यों कहिए कि, विक्रम सम्वत् १९४१ वैशाख बदी दशमी रविवार के मध्याह्न का शुभ समय था, जब चरित्रनायक ने पूज्यगुरु से सत्यं, शिवँ, सुन्दरं, साधुपद प्राप्त किया।

पाठको! आपके चरित्रनायक जी ने जो यह मुनि दीक्षा ली है सो यह कुछ साधारण सी बात नहीं है। संसार में कोई काम बुद्धिबल से होता है तो कोई काम हृदय बल से होता है। किन्तु यह दीक्षा का काम बुद्धि बल हृदय बल दोनों का है

दुर्बल आत्माएँ इस महाभार को वहन नहीं कर सकती। यह कोई हँसी ठट्ठा नहीं है कि, जिसका जी आए वही कर बैठे। मुनि दीक्षा के लिये आचार्य कहते आएहैं— "मुनि दीक्षा लेना मोम के दाँतों से लोहे के चने चबाना है महासमुद्र को भुजाओं से तैर कर पार करना है; गिरिराज सुमेरुका हाथपर धरकर वज़न करना है"। वस्तुतः मुनि दीक्षा एक खरी कसौटी है। नकलियों की क्या हस्ती जो इस कसौटी पर कुछ देर ठहर जायँ। इसपर तो खरे सोने जैसे वही वीरपुरुष ठहर सकते हैं, जो जीतेही हरदम मरने को तैयार रहते हैं। "कहीं मुश्किल कठिन फकीरी, है जिन्दाही मरजावना"।

कई भोले भाले भ्रमित सज्जन कहते हैं कि "साधु बनने मे क्या जोर पड़ता है? साधु तो हर कोई बन जाय। जरा कमाने खानेसे मन उतरा ना, कि मूँड मुँडा झोली लेकर बाबाजी बनेना"। पाठको! ऐसा कहने वाले सज्जनों की बुद्धिपर दया आती है। इन्हें वास्तविकता का कुछभी पता नहीं है। ये वेष परि-वर्तन करनेमें ही साधुपना समझते हैं। इन्हें क्या पताकि, वेष के साथ—साथ आत्माका भी परिवर्तन करना पड़ता है। यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखें तो इन विचारों का दोष भी क्या है? ये विचारे ऐरे—गैरे साधुओं की ऐरी—गैरी क्रियाओं को देख कर ही ऐसा धोखा खाजाते हैं। इन्हें फिर कुछ सोचने विचारने का भान नहीं रहता। अफसोस! नाम के धारी साधुओं ने काम के धारी साधुओं को भी पूरी-पूरी तरह कलंकित कर दिया है- भोली भाली धर्म की भूखी जनता को धोखे में डाल दिया है। ये पेट देव के पुजारी ऐसे ऐसे काम करते हैं, जिन्हें

"कथाहि खलु पापाना मलमश्रेयसे" पद्य के याद आजाने से पाप के डर से यहाँ नहीं लिख रहा हूँ। ऐसे ही मिथ्याभिमानी साधुओं से तंग आकर एक स हृदय कवि कह उठा है:—

''दुरा चारी दंभी जटिल जड़ मुंडे मुनि घने
प्रमादी पाखंडी अबुधगण गुंडे गुरु बने
अविद्या ठोने को विषय रसका रेवड़ चरे
हमारे रोने को सुन कर कृपा शंकर करे"

अस्तु, ये लोग कैसे ही हों। कुछ ही करें। मैं क्यों किसी की निन्दा बुराई में अधिक पड़ूँ। अब मैं तो झोली की निन्दा करने वाले प्रेमी बँधुओं से ही दो हृदय की बातें करता हूँ जिस से वह झोली के तत्त्व को समझें। जिस झोली को लेकर सच्चे साधु बनते हैं, यह झोली एक पवित्र वस्तु है-महान वस्तु है। इसकी तुलना करने वाली और वस्तु संसार में कहाँ है। यह अपने गुणों में बस एक ही है। झोली क्या है—भवभय भञ्जिका है, कर्मदल गांजका है, सकल जगज्जीव रंजिका है। बस झोली झोली है। मोक्षमार्ग की मंझोली है। यह झोली वह है जो अपने भक्तों के धूलि-धूसरित चरणों में राजा महाराजाओं के सुगन्धित तैल सिक्त मस्तकों को रगड़ वा देती है। इस पवित्र झोली को भोग-बिलाश के कीड़े क्या उठाएँगे? इसे तो वही मर्दों का मर्द उठा सकता है—

जो मिथ्यामोह से अज्ञानी की दृष्टि में सरस दिखाई देने वाले संसार के बिरस भोगों से बिरक्त होगया है। जो क्रोध

मान, माया, लोभ के चारों विष वृक्षों का क्रमशः शमता, मृदुता, सरलता और निःस्पृहता के तीक्ष्ण कुल्हाड़ों से मूलोच्छेद करने के लिए तैयार हो गया है। जो लोग सेवा के महत्व को समझकर संसार की वास्तविक सेवा करने के लिये अटल सेवक होगया-है। जो अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह रूप पंचमहाव्रत के क्षेत्र में पूर्ण रूपेण उतर गया है। जो दुःख सुख हानि लाभ मान अपमान बंधु वैरी जीवन मरण आदि सबविरोधीद्वन्दों को हृदय में एकसां स्थान देने वाला होगया है।

अस्तु—यह प्रकरण बहुत लंबा होगया है। अधिक लेख लिखने से कोई विशेष लाभ नहीं। इसी संक्षिप्त लेख से झोली को और झोली वाले को नगण्य समझने वाले सज्जन समझें और शान्त दृष्टि से झोली की तथा झोली वाले की महत्ता का ज्ञान करें भगवान महावीर की बताई हुई यह झोली एक विचित्र शक्ति वाली झोली है। इस झोली की यह दुनियाँ हमेशां दासी रही है और रहेगी। अब झोली की तथा झोली वालो की प्रसंशा में एक झोली भक्त कविकी कविता लिख कर झोली देवी की जय बोलते हुए यह प्रकरण यहीं पर समाप्त किया जाता है:—

मुमुक्षु को मोक्ष पथे चढ़ावे
जिज्ञासु इससे कुछ ज्ञान पावे
संसारी को पुण्य अपावनारी
गुणज्ञ को झोली है लाभकारी

ज्ञान, शान्ती, बोध, समता, त्यागकी जो भावना
उपदेशती झोली सभी को मौन व्याख्या से सदा
तत्व मुनि जीवन का यह सारा खरा खर ही कहे
अधिकारी कोई ही इसी से लाभ देवे अरू लहे"

वैराग्य-बोध-समता--सुविवेक धारी
छेदी समस्त भय बन्धन दुःखकारी
झोली ग्रही परिग्रह ममता तजे जे
लोकोपकार करता फिरता फिरे ते"

—:o:—

## प्रकरण ६ वां

## संन्यासी से बात चीत

प्रारम्भ्यते न खलुविघ्न भयेन नीचैः प्रारम्भ्य विघ्न विहता विरमन्ति मध्याः
विघ्नैः पुनः पुनरपिप्रतिहन्यमानाः प्रारम्भ्य चोतम जना न परित्यजन्ति
"भर्तृ हरि"

दीक्षा के बाद नये शिष्य चरित्र नायक और गुरु देव श्री मंगलसेनजी महाराज कुताना से विहार करते हुए दोघट पधारे। यहाँ श्रावगों ने गुरुदेवजी से वीनति करके एक कल्प का वचन लेलिया। गुरुदेव के ओजस्वी व्याख्यानों से धर्म ध्यान खूब उत्साह के साथ होरहा था। इसी बीचमें चरित्रनायक के मामा बहन और बहनोई आदि दोघट आए। इन्होंने चरित्रनायक को साधु पद से हटा कर घर ले जाने के लिए बहुत कुछ शोरोगुल मचाया। दोघट के श्रावकों ने और चरित्रनायक जी के गुरु-श्री ने उन्हें बहुत समझाया। पर वे न माने। चरित्रनायक जी ने भी शान्त शब्दों में समझाया और कहाकि—"क्यों फिज़ूल-का अड़ंगा करते फिरते हो। अब कुछ नहीं हो सकता। ज़रा सोच विचार कर बुद्धि से कामलो। जो बात तुम चाहते हो वह अब मेरे से नहीं हो सकती। क्या यह बात तुम्हारे दिमाग़

में आती है कि-मैं अब साधुपना छोड़कर घरमें चला जावूँगा? नहीं कभी नहीं। यदि यह तुम्हारा ख़याल हो भी तो यह बिल्कुल गल्त है। यह पूर नहीं पड़ सकता। यह तुम्हारा प्रयास जलमन्थन कर के मक्खन निकालने जैसा है। पितृ-वंश को चलाने वाला मेरा छोटा भाई आप लोगोंके पास है ही। अत: आप जो कुछ सलूक मेरे साथ करना चाहते हैं वह उसके साथ क्यों न करें? मैं तो अब इस संसार के कीचड़ से निकल चुका हूँ। मुझे अब अपना आत्म कल्याण करने दो। बीच में विघ्न-बाधाएँ पहुँचा कर व्यर्थ ही पाप के भागी मत बनो। तुम जो आज्ञा-आज्ञा की पुकार मचाते हो। सो आज्ञा के विषय में भी यह बात है कि आज्ञा के देने वाले माता पिता तथा बड़े भाई होते हैं। सोई कोई है नहीं। यह बहन है। इस ने भी "जब गुरु आवें तब तू अपना विचार देखलेना" कह कर पहले ही आज्ञा दे रक्खी है। तुम रहे रिस्तेदार। सो रिस्तेदारों की कहीं आज्ञा मानी नहीं जाती। यदि रिस्तेदारों की आज्ञा पर रहा जाय तो फिर कोई किसी को साधु ही नहीं होने दे"। इत्यादि बहुत कुछ समझा ने की चेष्टा करने पर भी उनके एक न जँची। वे अपनी बातोंपर ही तने रहे। अन्तमें-"हम कुछ नहीं चाहते। हम किसी प्रकार की विरुद्धता नहीं करेंगे। केवल, साधु वेष में ही ये हमारे साथ सिघाणे चलें। हमें सिर्फ अपने मनकी निकाल लेनी है"। ऐसा उनके कहनेपर गुरुदेव की आज्ञा से चरित्रनायक जी उनके साथ चलदिए। चरित्रनायक अपने प्रणपर दृढथे। इन्हें ध्येय से हटाने में निराशा चौड़े खड़ी पुकार रही थी।

अस्तु- चरित्रनायक जी अपने मामा आदि के साथ चलते-हुए बड़ोत पहुँचे। मामा आदि तो बाहिर बाग में ठहरे और आप बड़ोत में आकर स्थानक में ठहरे। दुपहर का समय हो गया था, अतः श्रावकों की बीनती पर आपने गोचरी लाकर आहार पानी किया। जब बड़ोत वाले भाईयों को आपके अकेले आने-का कारण मालूम हुवा तो। उन्होंने आपसे कहा कि—महाराज-वे कहाँ ठहरे हुए हैं? यदि वे हम लोगों से समझ सकें तो हमभी उन्हें समझाने का प्रयत्न करें? आप अकेले ही उनके साथ-साथ सिंघाणे कहाँ तक जायँगे?

आपने कहा कि— तुम्हारा कहना ठीक है। परन्तु- वे तुम से समझने मुश्किल हैं। उन्हें भाइयों से ही समझना होता तो दोघट ही न समझ जाते? आप लोग किसी प्रकार चिन्ता न करें। मैं उन्हें समझा लूँगा। वे अन्त में मेरेसे ही समझेंगे। अन्यथा करेंगे भी क्या?

चरित्रनायक की श्रावकों से यह बातें होही रही थी कि-इतने में ही चरित्रनायक के मामा स्थानक में आए। बड़ोत वाले भाइयों से न रहा गया। वे समझाने- बुझाने लगे। किन्तु "आप लोग बीच में न बोलें हम खुद अपनी बातें तय करलें गे"। ऐसा चरित्रनायक के मामा के कहने पर सब चुपके होगये। अब चरित्रनायकजी से बातें आरम्भ हुई। मामा ने बहुत कुछ उतार- चढाव की बातें की। करड़ी से करड़ी और नर्म से नर्म भाषा में उसने अपनी बात को उपर रखनी चाही। परन्तु— चतुर चरित्रनायक शान्ति के साथ मामा की एक एक करके सारी की सारी बातों का उत्तर देते चले गए और अपने गृहीतपक्ष को

समझाते गए। निदान मामा ने कहा कि अच्छा तुम हमारे समझाए तो नहीं समझते हो। हमें तो जो कुछ कहना था वह कह चुके, अब एक बात है कि- जिस बाग में हम ठहरे हुए हैं उस बाग में एक झोंपड़ी में संन्यासी रहते हैं। उनसे हमारा इस बात का जिकर आया था। सो उन्होंने हम से कहा है कि- यदि तुम उसे मेरे पास लावो तो जैसा हो मैं उसे समझादूं। मैं देखलूं कि वह किस भावना में है- किस विचार में है? वहमेरे से समझ गया तो समझ गया। नहीं तो, क्यों तो तुम दुःखी होते फिरो ? और क्यों उसे करते फिरो ? अत; आप संन्यासी से बातें करने के लिए हमारे साथ चलो। अब हम झूठा झगड़ा न करते न चाहते। यदि वह संन्यासी आपको हमारे पक्ष में न कर सका तो हम खुसी से आपको आज्ञा देदेंगे। हम वापिस अपने घर लौट जायँगे।

चरित्रनायक जी झट संन्यासी के यहाँ जाने के लिए तैयार होगए। जेठ की कड़ कड़ाती धूप वाली दुपहरीमेंही चरित्र-नायक गाँव के बाहर बाग में संन्यासी के पास पहुँचे। संन्यासी देखते ही खड़ा होगया। बड़े आदर के साथ हंसते हुए चरित्र-नायक जी को बैठने के लिए कहा। चरित्रनायक जी अपना आसन अपने साथ लेगए थे। अस्तु—योग्य स्थान में आसन बिछाकर बैठ गए। बहुत देर तक परस्पर बातें होती रही। कुछ सार मात्र पाठकों की जान कारी के लिए यहाँ लिखा जाता है:—

संन्यासी— कहिए, आप साधु क्यों हुए हैं? आपने साधु होने में क्या लाभ समझा ?

मुनि श्री— साधु क्यों होते हैं? साधु होने में क्या लाभ है? क्या यह आप अपने को साधु कहलाते हुए भी नहीं जानते?

संन्यासी— नहीं मैं नहीं जानता। मैंतो तुम्हारे कथनानुसार कहलाने का ही साधु हूं दूसरा नहीं। अतः मुझे क्या पता कि वास्तव में साधु क्यों होते हैं? साधु होने में वास्तविक लाभ क्या है? मेरी दृष्टि में तो कुछ काम न काज झट कहीं अलख जगाई और बनी बनाई रोटियाँ माँगकर खाली, यही एक साधु बनने में सबसे बड़ा लाभ है। मुझे तो एक दोहा याद है। जिसके उपर साधु बना जाता है:—

"मूंड मुँडायाँ तीन गुण, सिर की मिट गई खाज
खाने को लड्डू मिलें, लोग कहें महाराज"

क्यों है ना यही ठीक? मेरी राय में तुम भी इसी दोहे को लेकर साधु बने दीखते हो?

मुनि श्री— नहीं यह बात नहीं। मैं इस दोहे पर साधु नहीं बना। इस दोहे पर तो वही साधु बनते हैं। जो पेट के पुजारी होते हैं। जिन्हे गृहस्थ में आलसी होने के कारण पेट की भबकती हुई ज्वाला को शान्त करने का मौका नहीं मिलता। ये साधुता के नाम को कलंकित करने के लिये व्याघ्रचर्माच्छन्न गीदड़ बन जाते हैं और फिर हर वक्त ज्यों-त्यों करके अपनी पाँचो अँगुलियाँ घीमें तर रखते हैं। मुझे तो ऐसी साधुता से घृणा है। मैंतो, संसार, में चारों तरफ़

दुःख की धँधकती हुई भीषण ज्वालाओं से बचने के लिए, अपने आत्मारूपी सूर्य से कर्ममल का बादल हटाने के लिए, जन्म-मरण के चक्र का ध्वंसकर अजर अमर मोक्षधाम प्राप्त करने के लिए साधु बनाहूँ। यही मुझे साधु बनने में लाभ मालूम दिया है।

मुनि श्री— क्या आप जैनी आत्मा की सत्ता स्वीकार करते हैं? क्या मोक्ष की सत्ता स्वीकार करते हैं? भले महात्मा क्यों धोखे में पड़े हुए हो? यह आत्माका और मोक्षका झूठा अड्डा है। इसमें कुछ भी सचाई नहीं है। यह एक धूर्तों का रचा हुवा जाल है। जिसमें भोली—भाली धर्मकी भूखी चिड़ियां आ आकर फँसजाती हैं। बस इस अड्डेमें पड़कर तुम क्या लोगे? अपने घर जावो, विवाह करावो, और वहाँ प्रेमी परिवार में खावो, पीवो, मोज उड़ावो। यही एक दुनियाँ में आनेका सार है। देखो, यह तुम्हारी नौजवानी घरमें बैठ कर दुनियाँ के ऐश आराम भोगने के लिए है, नकि फकीरी के जालमें पड़ कर इधर-उधर धक्के पर धक्के खाते हुए दुःख भोगने के लिए। कैसा स्वर्ग? कैसा नर्क? यह सब कहने की बातें हैं। जो कुछ स्वर्ग है, नर्क है। वह यहां ही है। जो अच्छा खाता है, अच्छा पीता है, अच्छा पहरता है, अच्छी तरह रहता है। वह स्वर्ग में है; और जो इसके विपरीत दुःखमय जीवन विताता है वह नर्कमें है। अब तुम बिचारलो आप स्वर्गमें रहना चाहते हो या नर्कमें।

मुनि श्री— बस संन्यासी जी ऐसा न कहिए। आपकी ये बातें तो नास्तिकों जैसी हैं। साधुके वेषमें ऐसी बेसिर पैर की बातें कहना क्या कुछ कम लज्जाकी बात है? मैंतो जन्म से लेकर आज तक उस सभ्यतामें रहाहूँ जो स्वर्ग, नर्क, मोक्ष और जीवात्मा पर पूर्ण श्रद्धा रखने वाली है। मुझे तो जीवात्मा के होनेका पूर्ण विश्वास है। यह विश्वास मेरा अनुभवी विश्वास है। जीवात्मा के होनेकी साक्षी मेरा अन्तरहृदय देता है। मैं अभी शास्त्रीय युक्तियों का ज्ञाता नहीं बना हूँ, जो आत्माकी और मोक्षकी सिद्धि के लिए तुम्हें युक्तिवाद बतलासकूँ। हाँ, संसारमें जो एक सुखी, एक दुःखी, एक धनी, एक निर्धनी, एकज्ञानी, एक अज्ञानी परस्पर विरुद्ध दिखाई देते हैं, ये बतलाते हैं कि- जीवात्माहै और उसके साथ अच्छे बुरे कर्मों का सम्बन्ध है। जब यह सम्बन्ध सम्पूर्णतया हटजायगा तब यह निर्लेप बनकर परमात्मा बन जायगा और सदाके लिए सर्व प्रकार के दुःखों से छूट जायगा। बस एक यही युक्तियोंमें युक्ति है जो मेरे विश्वास को प्रतिदिन दृढ़ बनाती जा रही है। चाहे कोई बुद्धिवाद का दुरुपयोग करके इस युक्ति को गिरा भी दे। पर मैं तो अन्तर हृदय की साक्षी पर चलरहाहूँ; जिसके सामने युक्ति वाद कोई शक्ति नहीं रखता। अफ़सोस है, आप फ़कीर होकर फ़कीरी को जाल बताते हो और खावो, पीवो, मौज़ उड़ावो की सर्व नाश कारी शिक्षा देते हो। भले ही आपको

दुनियाँ में आने का यही सार मालूम दे। पर, मुझे तो यही सार मालूम देता है जिस पर कि मैं चलरहा हूं। जिस पर मेरे दयालु गुरु ने मुझे चलाया है। अब जो कोई जिज्ञासु मुझे मिलेगा उसे मैं इसी पर चलने के लिए कहूंगा।

संन्यासी— अजी! यह क्या विश्वास! यहतो अन्धविश्वास है जो मनुष्य को हमेशां धोखा देता है। अन्धविश्वास-पर चलकर आज तक किसी न कुछ फायदा नहीं उठाया। अन्धविश्वास का और सफलता का क्या सम्बन्ध? कुछ भी नहीं। दूसरे गुरु का क्या विश्वास उसने तुम्हें अपना शिष्य के रूप में नोकर बनाने के लिये धोखाही दिया होतो? ऐसे गुरु न मालूम दुनियाँ में कितने फिरते हैं। ऐसों को कौन पुछता है? हाँ तुम्हारे जैसे भोले-भाले अलबत्ता उनके फन्दे में फंस जाते हैं और सदा के लिए धोखा खाजाते हैं। मैं, तुम्हारे हित की कहता हूं, तुम इस विश्वास में कुछ लाभ नहीं उठावोगे।

मुनिश्री— यह आपने क्या कहा कि-यह विश्वास नहीं है। अन्धविश्वास है। यदि यह अन्धविश्वास है तो फिर विश्वास क्या चीज रहेगा? विश्वास पर यह आपका आक्षेप एडी से ले चोटी तक भूल भरा है। बिना विश्वास के तो दुनियाँ में कोई काम ही नहीं चलसकता। जोकुछ काम होता है वह विश्वास पर ही होता है। यदि सारा का सारा संसार अविश्वासी ही होजाय तो क्षण भर में कुछ का कुछ होकर संसार

का यह नक्शा ही बदल जाय। एक बीमार आदमी दवाई के विषय में खुद कुछभी न जानता हुवा वैद्य के विश्वास पर ही दवाई लेता है और चँगा होजाता है। एक समुद्रयात्री जहाज के चलाने का खुद कुछभी ज्ञान न रखता हुवा चतुर कप्तान के विश्वास पर ही जहाज में बैठजाता है और समुद्र पार होकर स्वाभीष्ट स्थानपर पहुँच जाताहै। यों एक दो क्या अनेक उदाहरण हैं जो विश्वास की असाधारणता बतला रहे हैं। यदि विश्वास कभी किसीका करना ही नहीं यह तुम्हारा सिद्धान्त है तो फिर मेरे साथ यह समझानेकी क्यों व्यर्थ की बात करते हैं? भला जिनगुरु का सम्बन्ध मेरे पूर्वजोंसे और मेरेसे रहा वहतो मुझे धोखादें और तुम एक नए आदमी, कभी जिन्दगी में आजतक मिलने का वास्ता नहीं पड़ा, धोखा नदो, क्या इसे कोई ठीक मान सकता है? कभी नहीं। मैं तो अपने गुरु परही विश्वास रक्खूँगा अन्य पर नहीं। चाहे कोई कुछ कहे। मुझे इस से क्या! मैं अपने विचार पर दृढ़हूँ।

संन्यासी—अच्छा यह न सही। पर यहतो बतावो कि तुम यह साधुपना कैसे पालोगे? साधुपद तो जगजानीता कष्टों का केन्द्र है। कभी खाने को मिलातो पीने को नहीं। कभी पीने को मिलातो खानेको नहीं। कभी खाना पीना दोनों ही नहीं। हाँ तुम्हारे जैन साधुओं में तो एक बहुत ही कठिन काम है। जब शिर के बाल पाड़ने होंगे तब कैसे बीतेगी? तब तो

सचमुच त्रिलोकी ना याद आजायगी ? बस अधिक क्या समझलो। अब तक तो तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ा है। सब बात ठीक- ठीक बनी हुई है। ये तुम्हारे सम्बन्धी तुम्हें घर लेजाने के लिए जी जान से कोशिश कर रहे हैं। घर में तुम्हें सब तरह का ऐश आराम रहेगा। यदि तुम अब अपने हठपरही अड़े रहोगे तो यह आज की मेरी बात याद रखना यह तुम्हारा साधुपने का चाव कुछही दिनों में उतर जायगा और तब तुम "दोनों खोई रे बूबना, आदेश अने जुहार" वाली कहावत के अनुसार उभय भ्रष्ट हो जावोगे। फिर तुम्हें लाख कोशिश करने के बादभी कोई घर में न बढ़ने देगा।

मुनि श्री— ये तुम्हारी बातें सबकी सब भ्रामक हैं। इनमें सूंघ ने को भी सत्यता नहीं है। मैंने जो मुनिपद प्राप्त करते समय प्रतिज्ञाएँ की हैं उन्हें जीवन पर्यन्त दृढता के साथ पालन करूंगा। साधुपद कष्टों का केन्द्र अवश्य है। परन्तु वे कष्ट किसको विचलित करते हैं? कायर को या साहसी वीर को ? साहसी के सामने ये बिचारे कष्ट क्या कर सकते हैं ? साहसी बराबर कष्टों को झेलता रहता है और आगे ही आगे बढ़ता रहता है। वह कष्टों की कुछ परवा नहीं करता। कष्ट तो उसकी ध्येयकी पूर्ति में मदद करने वाले हैं। भला साधुपन के कष्टों से क्या डरना। "ऊखल में शिर दिया तो मूसल से क्या डर"। दूसरे तुम इन कष्टों का बाह्य रूप देखते हो। इनका आन्तरिक रूप

देखोतो जिन्हें तुम कष्ट कहते हो ये कष्ट हीं नहीं है। इनके भीतर अक्षय आनन्द छुपा हुवा है। इस आनन्द को तुम्हारे जैसे भोगी भ्रमर साधु नहीं जान सकते।

बार बार युवावस्था का क्या जिकर लाते हो ? जो कुछ हो सकता है वह इसी अवस्था में ही हो सकता है। यदि इस अवस्था में साधुपना न लेंतो क्या खाट पर बैठे बैठे खूँ खूँ मचाने वाले बूढे होकर लें ? मैं अपने प्रण पर पक्का हूँ। तुम्हारी कहावत मेरे पर लागू नहीं हो सकती। सो बातों की एक बात है अब मैं गृहस्थ में जाकर, उभय भ्रष्ट होकर अधम पुरुष नहीं कहला सकता; इसके लिये कबीरजी का यह वचन तुम्हें अपने हृदय में रख लेना चाहिए:—

"साधु सती और शूरमा ज्ञानी अरु गजदन्त
यह निकसे नहीं बाहुड़े जो जुग जाय अनन्त"

इस प्रकार लंबी बात चीत के बाद संन्यासी हँस पड़े और कहने लगे— महात्मन् ! क्षमा करें। मैंने जो आपसे बातें कही हैं सब परीक्षा के लिये ही कही हैं। यह न समझें कि मैं स्वर्ग नर्क मोक्ष और जीवात्मा को नहीं मानता हूँ।

मुझे निश्चय हो चुका है कि, आप अपने प्रण पर सदा के लिए दृढ़ रहेंगे। आप अपनी प्रतिज्ञा से किसीभी अवस्था में विचलित नहीं होंगे। आप अपने समय के एकआदर्श साधु निकलेंगे।

इस प्रकार चरित्रनायकजी से बातें कहते हुए संन्यासीने चरित्रनायक के मामा से भी कहदिया कि आप लोग क्यों इनके पीछे पड़े हुए हैं? जिस आशापर आप इनके पीछे फिरते हैं वह आशा इनसे नहीं पूरी हो सकती। तुम जावो अपना काम करो और इन्हें अपना काम करने दो। इसी में कल्याण है।

चरित्रनायक के मामा आदिने भी आखिर चरित्रनायक से कहदिया कि महाराज! हमारी आज्ञा है। आप अपने इस मुनिपद को पूर्ण रूपेण पालन करें। हमारी तरफ़ से अब भविष्य में किसी प्रकार की रोक रुकावट न होगी। हमने जो भूल में आकर आपको यह कष्ट दिया है इसकी हाथ जोड़कर क्षमा चाहते हैं।

अस्तु,–इस प्रकार निर्णय हो जाने पर वेतो सिंघाणे को चलदिए और चरित्रनायक जी "जोहड़ी" होकर दोघट गुरु चरणों में जा पहुँचे।

—:o:—

## प्रकरण ७ वाँ

### चतुर्मास १ संवत् १९४१ लुहारी

# अविचल–साहस

मन न मचल जाय पग न विचल जाय
अचला अचल चाहे चंचल हो चल जाय
"साहसी"

चरित्रनायकजी का इस वर्ष का अर्थात् १९४१ का प्रथम-चतुर्मास गुरु श्री के संग लुहारी में हुवा। इस चतुर्मास में आपने दशवैकालिक के चार अध्ययन और बहुत से थोकड़े कंठस्थ किये। आपने सिज्झाय स्तवन भी बहुत याद किए। दिन में गुरुदेव के व्याख्यान के बाद और रात्रि में प्रतिक्रमण कर लेने के बाद श्रोताओं को आप स्तवन सुनाया करते थे। आपने इस चतुर्मास में तपश्चर्या भी खूबकी। संपूर्ण चतुर्मास अर्थात् चार महिने आपने एकान्तरोपवास किए। एक दिन उपवास एक दिन भोजन इस प्रकार लगते उपवासों की तपश्चर्या को एकान्तरोपवास कहते हैं।

इतनी कठिन तपश्चर्या फिर बिमारी की हालत में यह एक और भी कड़ी बात थी। आपको नाहरवाकी बीमारी आषाढ सुदी से प्रारंभ हुई थी और आखिर मंगसिर में जाकर वह

शान्त हुई। सारा चतुर्मास नाहर वे की कड़ी पीड़ा मे ही गुजरा। इस बिमारी में आपने सहन शीलता का बड़ा ही आदर्श परिचय दिया। विमारी की हालत को देख कर कई श्रावकों ने आपसे कहा कि "महाराज! इतनी कठिनता न करें। आपकी यह हालत एकंतरा करने की नहीं है। इस हालत में यह विमारी कहीं खतर नाक न होजाय। जरा सोच समझ कर करें। तपश्चर्या के लिए सारी जिन्दगी है"। परन्तु आप अपने विचार पर अटल रहे। आप अपने लक्ष्य-बिन्दु से न हटे। आखिर सारा चतुर्मास प्रण के मुताबिक एकंतरा करने में बीताही तो दिया। महाकवि भारतेन्दु ठीक कहगए हैं:—

१

सहत विविध दुख मरिमिटत—भोगत लाखन सोग
पै निज सत्यन छांडही जे जग साँचे लोग

२

चलै मेरु वरु प्रलयजल पवन झकोरन पाय
पै बीरन के मन कबहुँ चलहिं नहीं ललचाय

धन्य है ऐसे साहसी बीरों को। ऐसेही बीरों का आदर्श हमारे जैसे दुर्बल जीवों के अन्तरहृदय में साहस का अदम्य मंत्र फूंकने वाला है।

—:०:—

# प्रकरण ८ वाँ

चतुर्मास २-३ संवत् १९४२—४३ महेंद्रगढ़--सिंघाणा।

## धर्म-प्रभाव

लुहारी का चतुर्मास पूर्ण करके व्याधिकी शान्ति हो जाने पर पोष में चरित्रनायकजीने गुरुदेव के संग विहार किया। ग्रामानुग्राम विहार करते हुए जेठ के महिने में अपनी जन्म भूमि सिंघाणे में पधारे। कुछ विरोधियोंने आपकी मुनि दीक्षा पर भीषण विरोध उठाया। आपके छोटे भाई को और बहन को बहका दिया। भाई बहन ने कोतवाली में पुकार की। कोतवाल आपको थाने में लेगया। आपको वहाँ छाया में बैठने के लिए कहा गया किन्तु-आप वहाँ न बैठे और सूर्याभिमुख खड़े होकर कड़ी धूप में ही लोगस्स का ध्यान करना शुरू कर दिया।

धर्म की शक्ति विचित्र है। धर्म की शक्ति के सामने समग्र अन्य शक्तियाँ औंधे मुँह गिर जाती हैं। जो धर्म की रक्षा करता है धर्म भी समय पड़ने पर उसकी अवश्य रक्षा करता है। धर्म पर अटल श्रद्धा काम पड़ने पर चमत्कार दिखाए बिना नहीं रहती। अस्तु- खड़े खड़े कुछ ही समय हुवा था धर्म के अदम्य प्रभाव ने कोतवाल के हृदय पर चरित्रनायक जी का वह प्रभाव बैठाया कि, कोतवाल चरित्रनायक जी के चरण कमलों में आ गिरा। अपने अपराध की क्षमा मांगते हुए कहा कि- महाराज हमें पता नहीं था

हमसे भूल होगई जो हम भूलसे आपको यहाँ ले आए। साधु और फिर उनको थाने में रोकना यह कितना बड़ा भयंकर अपराध है। अब चाहे कोई कुछ कहे, पर हम आपके कार्य में कुछ विघ्न नहीं करेंगे।

चरित्रनायक जी कोतवाल को क्षमा प्रदान कर गुरु सेवा में आगए। श्रावकों में जो खल बली मची हुई थी वह शान्त हो गई। श्रावकों के हर्ष का कुछ पार न रहा। यह बात हुई फिर भी विरोधी ठंडे न पड़े। वे तहसीलदार के पास पहुंचे। किन्तु-उसने भी कुछ न सुनी। नकारात्मक उत्तर दे दिया कि, मेरेसे कुछ नहीं हो सकता। जो तुम्हें करवाना हो वह खुद महाराज खेतड़ी से करवालो। तहसीलदार का जवाब मिलने पर विरोधी चरित्र-नायकजी के भाई और बहनको लेकर खेतड़ी पहुंचे और खेतड़ी नरेश अजीतसिंह जी के समक्ष दुहाई मचाई। महाराज अजीतसिंह जी प्रजाप्रेमी तथा धर्मिष्ठ राजा थे। आप सभी संप्रदायों के साथ समानता का बर्ताव रखते थे। चाहे कोई किसी भी संप्रदाय का साधु क्यों नहो आप सभी साधु सन्तों के भक्त थे। आप साधु सन्तों के कोपसे उतना ही डरा करते थे जितना कि एक मृग शिशु सिंहसे डरा करता है।

अस्तु,-आपने आदि से अन्ततक का तमाम हाल सुनकर साफ़ शब्दों में कह दिया कि-"हम इसमें क्या करें? यों कोई किसी का रोका हुआ नहीं रुक सकता। यहतो सब लेने वाले की इच्छा पर निर्भर है। इस में बताओ तुम हम कौन? हाँ, कोई नादान बच्चा हो उसे बहका कर कोई ऐसा कर रहा हो। तबतो

मेरी राज शक्ति कुछ बीच में दख़ल देसकती है। परन्तु, वैरागी के विचार में दख़ल देना यह राजशक्ति की सीमा से बहुत बाहिर का काम है।

अरे वह साधुही तो बनता है। और कुछतो नहीं बनता। यह अच्छा ही तो काम है बुरा तो नहीं। वह राम के नामपर संसार को छोड़ कर अपना उद्धार करता है तो करने दो। इसमें तुम्हारा क्या हर्ज़? मैं तो इस काम में कुछ नहीं कर सकता। मुझे तो साधु सन्तों को छेड़ते हुए डरलगता है।

अस्तु,-खेतड़ी नरेश का सूखा जबाव मिलने पर विरोधी आपही बैठगए। सिघाणे में इस विरोध से जो हलचल मची हुई थी वह शान्त होगई।

यहाँ से विहार करके गुरुदेव के संग चरित्रनायकजी कानोंड आए। यह संवत् १९४२ का चतुर्मास कानोंड में ही हुवा। इस चतुर्मास में भी आपने अच्छी तपश्चर्या की। अपनी बुद्धिके अनुसार ज्ञानाभ्यास भी अच्छा किया।

इस चतुर्मास के बाद संवत् १९४३ का चतुर्मास सिघाणे हुवा। इस चतुर्मास के समय को भी आपने ज्ञानाभ्यासएवं गुरु-सेवा आदि धार्मिक-क्रियाओं से सफल किया।

# प्रकरण ९ वाँ

## चतुर्मास-४-संवत् १९४४-महेन्द्रगढ़

## प्रथम व्याख्यान

सिंघाणे का चतुर्मास पूर्ण करके गुरुदेव के संग खेतड़ी पहुँचे। खेतड़ी कुछ दिन ठहर कर खँडेले पधारे। इस समय खँडेले की स्थिति बहुत विकृत होरही थी। जितने भी घर ओसवाल भाईयों के थे प्रायः सभी के यहाँ से सच्चा जैनत्व लुप्त होरहा था। तेरा पंथी साधुओं द्वारा दया दान आदि सद्धर्म का बहिष्कार होरहा था। किं बहुना, धर्म प्रिय जनता भगवान महावीर के सिद्धान्त के विरुद्ध चली जारही थी। खँडेले पहुँच कर गुरुदेव जीने दया दान का सुमधुर उपदेश दिया। सबके हृदयों से अपसिद्धान्त की कालिमा दूरकी। सबको भगवान महावीर के सत्य सिद्धान्त की शिक्षा दी। सबको तेरा पंथ की अंधश्रद्धा का त्याग करवा कर सनातन जैन धर्म की श्रद्धा दी।

इस प्रचार में चरित्रनायक जी ने भी गुरुदेव जी की काफी मदद की। दिन और रात्रि में भाइयों को बोल-विचार सिखाने का काम आपही के हाथ में था। आप बड़ी योग्यता के साथ शंका समाधान पूर्वक बोल विचार सिखाते और अपना आशय समझाते।

खंडेले करीब एक महिने ठहरे। इस एक महिने में ही वर्षों की बिगड़ी हुई स्थिति को ठीक करदी। लुप्त होती हुयी जैन धर्म की प्रभा को फिर प्रस्फुरित करदी।

यहाँ से फिर खेतड़ी आकर अन्य क्षेत्रों में विहार करगए। इस वर्ष का अर्थात् संवत् १९४४ का चतुर्मास मन्हेद्रगढ़ में हुवा। चरित्रनायक जीने इस चतुर्मास में व्रत बेला तेला चोला आदि की अच्छी तपश्चर्या की। भूरामल, बलदेवसहाय आदि की प्रेरणा से चरित्रनायक जीका प्रथम व्याख्यान भी यहीं मन्हेद्रगढ़ में ही हुवा। इस प्रथम व्याख्यान में चरित्रनायकजी ने उतराध्ययन-सूत्र का इक्षुकाराध्ययन बाँचा। आपकी कथन शैली से श्रोताओं के हृदय पर अच्छा प्रभाव पड़ा। बलदेवसहाय आदि श्रावकों ने आपके इस व्याख्यान की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करके आपके उत्साह की बहुत वृद्धि की। यहाँ से आपकी व्याख्यान सम्बन्धी संकुचितता कुछ अंश में दूर होनी शुरू हुई।

# प्रकरण १० वाँ

चतुर्मास -५-६-सं० १९४५-४६—नारनौल, कानोड़

## गुरु श्री की रुग्णावस्था

महेन्द्रगढ़ के चतुर्मास के अनंतर संवत १९४५ का चतुर्मास नारनौल में हुवा। नारनौल के चतुर्मास से अगला संवत १९४६ का चतुर्मास फिर महेन्द्रगढ़ में ही हुवा। इन दोनों चतुर्मासों में चरित्रनायक जीने सनातन जैन धर्म के कतिपय शास्त्रों का अध्ययन किया। शास्त्रों के गूढ़रहस्य को खोलने वाले बहुत से थोकड़े भी आपने कंठस्थ किये। इन दोनों चतुर्मासों के समय में आप श्री के गुरुदेवजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था। अतः आपको व्याख्यान देने का कई बार काम पड़ता रहा। आप गुरुश्री की आज्ञा से निःसंकोच भावसे व्याख्यान देते। बीचमें जहाँ कहीं स्खलना होती गुरुश्री झट सावधान करदेते। इस अवसर पर आपको व्याख्यान देनेका अच्छा अभ्यास होगया।

# प्रकरण ११ वाँ

## चतुर्मास ७ संवत् १९४७—आगरा

## आदर्श-क्षमा

महेन्द्रगढ़ का चतुर्मास पूर्ण करके गुरुदेव के संग चरित्र-नायक जीने आगरा को विहार किया ! महेन्द्रगढ़ से विहार करते हुए अलवर पहुँचे। यहाँ श्रावकों में धर्म ध्यान की अच्छी जागृति रही। अलवर से विहार करके बड़ेर, बड़ेर से मौज़पुर पहुँचे। यहाँ पलीवाल भाइयों के ५० — ६० घर थे। दो दिन ठहरे। दोनों दिन उपदेश हुवा। जैन अजैन सभी भाइयों ने उपदेश से त्याग आदि लेने का अच्छा लाभ उठाया। यहाँ से "खोह" को विहार किया। मार्ग में बड़ी कठिनता का सामना करना पड़ा। मौजपुर के और खोह के बीच एक ऊँचा पहाड़ पड़ता है। आने जाने वाले राहगीरों को इस पहाड़ की घाटी से ही आना जाना पड़ता है। अस्तु, पहाड़ के पास आकर मार्ग के मालूम न होने के कारण मुनिराज मार्ग भूलगए। जाना था नीचे वाली घाटी से और चलदिए उपर वाली घाटीसे। पहाड़ी वृक्षों के काँटों से पैर विंधते चले गए। दोनों पैर लहु लुहान होगए। अधिक क्या, बड़ी कठिनता से पहाड़ को

लाँघकर दिन छुपते-छुपते "खोह" पहुँचे। "खोह" में तीन दिन तक विश्राम लिया। उपदेश होता रहा। त्याग पचखाण खूब हुए। खोहसे "थंदोखर" गए। "थंदोखर" से अक्षयगढ़ पधारे। यहाँ गाँव में किसी ने ठहरने को जगह न दी। आखीर, दिगंबर जैन मन्दिर की पोली में ठहरे। गोचरी के लिए चरित्रनायकजी गाँवमें गए। धर्मान्ध लोगोंने द्वेष में आकर फ़ोस गालियाँ बकी। कुछ विचार दुर्बलोंने तो पत्थर व, ईंटे भी मारी। किन्तु, शान्त चरित्रनायकजी ने इस दुष्टता का कुछ प्रत्युत्तर न दिया। जिसने जो कुछ किया उसे शान्ति के साथ सहन किया। आहार पानी की भी कुछ तज़ बीज़ न बैठी। स्थान पर आकर गुरु श्री से निवेदन करने पर गुरु श्री और चरित्रनायक मंदिर की पोली से बाहिर आकर बैठगए और ॐ नोस्वर से स्तवन पढने लगे। लोगोंका जमाव होने पर उपदेश दिया। उपदेश का ऐसा प्रभाव पड़ा कि औरों की तो बात क्या जिन विरोधियों ने पत्थर मारे थे वेही चरणों में आकर गिरपड़े और अपने अपराध की क्षमा माँगने लगे। धन्य है, वास्तविक शान्ति क्या नहीं कर देती? पर वास्तविक शान्ति हो तबना? यहाँ अक्षयगढ से नंदवई पहुंचे। नंदवई में और तो कोई जैनियों के घर थे नहीं। हाँ, बहुत समय से जमनापार बामनौली गाँव के जैन भाई रहते थे। इनके चार पांच घर थे। पर इन को अपने जैन धर्म की बाबत कुछ भी पता नहीं था। ये सबके सब मिथ्यात्व में पड़गए थे। अतः यहाँ तीन दिन ठहरे और उपदेश देकर इनके जैन धर्म पर पुनः दृढ़ किए। सबको नवकार मंत्र सामायिक संवर आदि सिखा कर धार्मिक क्रियाएं करानी शुरू करवादी। यहाँ से पैरसल पैरसल से सेवर पधारे। यहाँ पल्लीवाल वैश्य जैनधर्म का पालन

करते हैं। दो दिन ठहरे। उपदेश दिया। तमाखू भंग आदि के बहुत से त्याग हुए। यहाँ से भरतपुर पहुँचे। जैन मंदिर में ठहरे। १५–१६ दिन जबतक ठहरे बराबर उपदेश होता रहा। भरतपुर से अन्य क्षेत्रों में विहार करते हुए आगरा पहुँचे। यह संवत् १९४७ का चतुर्मास आगरा लोहा मंडी में हो हुवा। धर्म ध्यान खूब अच्छा हुवा। भाइयों में बड़ा उत्साह रहा। चरित्र-नायक जी ने इस चतुर्मास में अठाई अर्थात् आठ दिन का व्रत किया। पारणा में कुछ विकृति आजाने से बाद में बड़ी पीड़ा रही। बहुत कुछ चिकित्सा के बाद स्वास्थ्य ठीक हुवा।

## सुधा–धारा

(१) जो हर वक्त यही सोचता रहता है कि-"संसार के सभी प्राणी सुखसे प्रेम और दुःख से द्वेष करते हैं" वही सच्चा पण्डित है।

(२) वास्तव में दुनियां में अज्ञानही अहित कर्ता है।

(३) आत्मा से परमात्मा बनने का अचूक साधन ब्रह्मचर्य ही है।

(४) यदि विवेक है तो गांवमें रहते हुए भी धर्म है। और निर्जन बन में रहते हुए भी धर्म है। यदि विवेक नहीं है तो गांवमें रहते हुए भी धर्म नहीं है और निर्जन बन में रहते हुए भी धर्म नहीं है। सारांश यह है कि जहां विवेक है वहां धर्म है। जहां अविवेक है वहां अधर्म है।

"भगवान महावीर"

# प्रकरण १२ वाँ

### चतुर्मास ८ संवत् १६४८ नारनौल

## बिहारकी—कठिनता

आगरे का चतुर्मास पूर्ण करके लश्कर की तरफ़ विहार किया। आगरे से चलकर दो तीन घड़ी दिन बाकी रहे तेरा-गाँव पहुँचे। रात्रि योग्य स्थान के लिए गाँव में तीन बार फिरे पर किसी ने ठहर ने को जगह न दी। निदान, गाँव से निकल कर बाहर वृक्षों के नीचे ठहरने के लिए आरहे थे कि एक आगरे का रहने वाला आदमी मिलगया। वह इस गाँव में चौकीदार था। उसने एक ब्राह्मण के छप्पर में ठहराए। रात्रि को भजन आदि कहकर उपदेश दिया। सुनने वालों की खासी भीड़ जमा हो गई। सबको जैन धर्म की क्रियाओं का ज्ञान कराया। बहुत से लोगों ने मांस मद्य आदि के त्याग किए। प्रात: होतेही विहार करके मणियां पहुँचे। यहां आगरे के हल्लूमल मूलचन्द आदि १०—१५ भाई दर्शनार्थ आए। यहां से धौलपुर पधारे। आगरे के सेठ प्रीतमचन्द की कोठी में ठहरे। उपदेश हुवा। अजैन जनता का जैन धर्मपर खूब प्रेम पूर्ण विश्वास हुवा। यहाँ से चम्बल नदी उतर कर बीरी गाँव गए, पर बीरी में किसीने ठहरने नहीं दिए अतः सूर्यास्त होते होते छुंदे पहुँचे। छुंदे से बामोर पहुँचे।

यहाँ भी ठहर ने को जगह न मिली। अतः गाँव के बाहर एक पुराना फूटा हुया मन्दिर था उसमें ठहरे। सूर्यास्त के बाद एक वैरागी साधुओं की जमात भी वहीं आकर ठहरी। जमात के महन्त के साथ चरित्रनायक जी की बहुत से धार्मिक विषयों पर बात चीत हुई।

महन्त— जैन साधुओं के मूल नियम क्या क्या होते हैं ?

मुनि— जैन साधुओं के मूल नियम पाँच होते हैं। जिन्हें जैन धर्म में महाव्रत कहते हैं। जैन साधु का पहला महाव्रत अहिंसा का है। इस महाव्रत के लिए जैन साधु दीक्षित होते समय प्रतिज्ञा करता है कि- मैं आज से प्राणिमात्र के साथ मैत्री का प्रण करता हूँ। चाहे मुझे कोई कितना ही क्यों न सताए, किन्तु, उसके प्रति और तो क्या ? मन में दुर्भावना तक न लाऊँगा। मैं प्राणिमात्र को पीड़ा देने का, दिवाने का और देते हुए को अच्छा समझने का मन, बचन, काया के योग से आज से प्रत्याख्यान कर पूर्ण अहिंसा व्रत धारण करता हूँ।

जैन साधुका दूसरा महाव्रत सत्य का है। इसके लिए प्रतिज्ञा की जाती है कि: मैं आज से क्रोध, मान, माया, लोभ आदि किसी भी कारण से स्वयं झूठ बोलने का दूसरों से बुलवानेका और, बोलनेवालोंको अनुमोदन करनेका मन, बचन, कायाके योगसे प्रत्याख्यान कर पूर्ण सत्य-महाव्रत धारण करता हूँ। परम सत्यही मेरा लक्ष-बिन्दु है। अवसर आनेपर सत्यकी रक्षा के लिये सहर्ष प्राणों की आहुति दे दूंगा मगर सत्य से न हटूँगा।

जैन साधु का तीसरा महाव्रत अस्तेयका है। इसकी प्रतिज्ञा होती है कि:— मैं आजसे विना आज्ञा चोरीसे और तो क्या दन्त शोधनमात्र नगण्य वस्तु के भी लेनेका लिवानेका लेतेहुए को अनुमोदन करने का प्रत्याख्यान कर पूर्ण अस्तेय महाव्रत धारण करता हूँ।

जैन साधु का चोथा महाव्रत ब्रह्मचर्य का है। इसकी प्रतिज्ञा की जाती है कि:— मैं आजसे कायिक वाचिक मानसिक तीनों प्रकार के मैथुन का तीन करण से त्याग कर पूर्ण ब्रह्मचर्य महाव्रत धारण करता हूँ। मैं संसारकी समस्त स्त्रियोंको माता, बहन, पुत्री तीन विभागों में विभाजितकर विमल ब्रह्मचर्य से ब्रह्मपदवी प्राप्त करूंगा।

जैन साधु का पाँचवाँ महाव्रत परिग्रह का है। एतदर्थ प्रतिज्ञा होतीहै कि:— मैं आजसे मन वचन कायाके योगसे कौड़ीमात्रभी परिग्रह रखने का रखवाने का रखते हुए को अनुमोदन करने का प्रत्याख्यान कर पूर्ण अपरिग्रह व्रत धारण करता हूँ।

महन्त – ये आपके नियम तो बहुत करड़े एवं विशाल हैं। वास्तव में साधुता आप के इन्हीं महाव्रतों में है। यह तो आपका सबकुछ ठीक है पर मैंने सुना है आप जैन साधु कभी स्नान नहीं करते। यों गलीच रहना ठीक तो नहीं है।

मुनि—कौन कहता है जैन साधु स्नान नहीं करते? अन्तरहृदय में बहने वाली ज्ञान गंगा में जैन साधु निरंतर स्नान करते रहते हैं, और अपनी अन्तरात्मा को पवित्र बनाते रहते हैं।

आपही कहिए-साधु शरीर शुद्धि के लिए बनते हैं या आत्म शुद्धि के लिए? शरीर शुद्धि तो गृहस्थ में होही जाती है फिर साधुपद क्यों? "शरीर शुद्धि आत्मिक शुद्धिमें बाधक है" इसके लिये कोई इन्कार नहीं कर सकता। शरीर स्नान शृङ्गार का एक अङ्ग है। इससे कामोद्दीपन होता है। अतः इस शृङ्गार की दृष्टि से शरीर स्नान का साधुसे सम्बन्ध छूट जाता है। आपके मनुस्मृति गोतमस्मृति आदि धर्म ग्रन्थ भी एसाही कहते हैं। सारांश यह है कि—जैन साधु शरीर स्नान न करके आत्मिक स्नान करता है। सूक्ष्मविचार करने-पर शरीर स्नान आत्मिक स्नान में विघ्न पहँचाता है।

महन्त-आपकी इस विचार पूर्ण भाषण शैली से मैं बड़ा प्रसन्न हूँ। आपके नियमों का मेरे हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। हम साधुओं के योग्य कोई नियम होतो कहिएगा।

मुनि- आपकेयोग्य इस समय और नियम तो क्या? हाँ, आप एक नियम अवश्य करलें कि "कभी तमाखू सेवन न करें" आपके ये साधुभी बहुत अधिक तमाखू पीते है। साधु और फिर तमाखू पीवें यह बहुतही लज्जा जनक बात है। आपतो साधु कहलाते हैं तमाखू से तो सभ्य गृहस्थ भी घृणा करते हैं।

अस्तु, चरित्रनायकजी के सदुपदेश से महन्त ने और अन्य भी कई साधुओं ने तमाखू पीने का सदा के लिए त्याग कर दिया

वहाँ से विहार करके लश्कर पधारे। यहाँ भाइयों में बड़े उत्साहके साथ धर्म ध्यान हुवा। यहाँ बत्तीस शास्त्रों के पढ़ेहुए मेघराज और पूर्णमल दो श्रावक थे। इनसे चरित्रनायक जीने बहुतसी सूत्र विषयिक धारणाएँ दृढ़ की। यहां एक कल्प ठहर कर मुरार पधारे। यहाँ पर भी उपदेश हुवा। उपदेश में जनता ने अच्छी दिलचस्पी ली। यहां से अन्य गांवों में विहार करते हुए ककुवे आए। गांव के बाहर सड़क पर वृक्षों के नीचे ठहरे। दुपहर का वक्त होगया था। गुरु श्रीकी आज्ञा मिलने पर चरित्र-नायकजी आहार पानी के लिए गांव में गए। गांव में फिरते रहे पर किसी भी घर से आहार पानी का योग न मिला। वापिस आरहे थे एक ब्राह्मण मिलगया। उसके यहां से एक रोटी मिली ब्राह्मण के पास ही एक और ब्राह्मण का घर था। चरित्रनायक जी ब्राह्मण के भ्रमसे उस घरमें भी जापहुँचे। पहुँचना था कि-बस, गृहस्वामिनी ब्राह्मणी के क्रोध का पारा चढ़गया। वह देखते ही भड़क उठी और सारा मकान अधर उठा लिया। चुल्हे में से जलती हुई लकड़ी लेकर "आया कहीं का हरामण रांड का जाया। कमाणे खाणे से नीत उतरी कि मुंह के पाटा बाँधकर मांगणे खाणे पर कमर बाँधली। न ब्राह्मण का घर देखे न और किसीका घर देखे। ले आज उरे तेरा मुह फूकूं" कहतीहुई चरित्रनायक जी की तरफ झपटी। चरित्रनायक जी शान्ति से मौन थे। ऐसी देवी से और क्या कहते? विचारे गृहस्वामी ब्राह्मण देवता ने ही बड़ी मुश्किल से खुशामद कर कराकर गृहदेवीजी को थामी

चरित्रनायकजी अब बीचमें कहीं नहीं जाकर सीधे गुरु सेवा में जा पहुंचे। समस्त घटना गुरु श्री को कह सुनाई। गुरु श्री ने कहा — कोई बात नहीं।

यहतो एक बहुत साधारण सी बात है। हमारे पूर्व जों ने तो यह क्या अनेक असह्य यातनाएँ भोगी हैं। वत्स! साधुओं के ऊपर तो संकट आयाही करते हैं। साधुका जीवन ही संकट की भीषण पहाड़ियों के बीच से गुज़रता है"। इस प्रकार गुरुश्री ने साहस वर्द्धक प्रवचनों से सहन शीलता का पाठ पढाते हुए चरित्रनायक जी से फिर कहा—ख़ैर भोजन की तो कोई बात नहीं। परन्तु—कुछ प्यास अधिक ज़ोर देरही है। अत: ये जो सड़क के पास तीन चार बनियों की दुकानें हैं। ज़रा इनके यहां जावो। आशाहै कुछ पानी मिल जाय, नहीं तो नहीं हैही। अस्तु, गुर्वाज्ञा मिलने पर चरित्रनायक जी दुकानों पर पहुँचे। कुछ थोड़ासा पानीभी मिला और साथही तीन मुट्ठीभर चणेभी मिले। गुरु शिष्योंने आनन्द के साथ यहीं आहार पानी करके यहाँसे बिहार कर दिया। बीचमें कई गाँवोंमें ठहरते हुए आगरा हाथरस, भरतपुर होते हुए नारनौल पधारे। संवत १९४८ का चतुर्मास चरित्रनायक जीका गुरु श्री के साथ यहीं नारनौल में ही हुवा। इस चतुर्मास में चरित्रनायक जी ने अन्य तपश्चर्या के अलावा अठाई की तपश्चर्या की।

# प्रकरण १३ वाँ

## चतुर्मास-९-१०-संवत् १९४९-५० कानोंड नारनौल

## तपश्चर्या

नारनौल का चतुर्मास पूर्ण करके अन्यक्षेत्रों में विहार कर दिया। परन्तु-गुरुश्री की रुग्णावस्था के कारण लंबा विहार न हो सका।

अस्तु, विक्रम संवत् १९४९ का चतुर्मास कानोंड हुवा और विक्रम संवत् १९५० का चतुर्मास फिर नारनौल हुवा। इन दोनों चतुर्मासों में भी चरित्रनायक जी ने अच्छी तपश्चर्या की कानोंड में सात दिन तथा नारनौल में आठदिन किए। अन्य व्रत, बेला तेला चोला, पचोला आदिकी तपस्या अलग हुई। गुरुश्री की सेवा करके चरित्रनायक जीने अक्षय लाभ प्राप्त किया।

# प्रकरण १४ वाँ

## चतुर्मास ११-१२ संवत् १६५१—५२

## बड़ोत-बिनोली

नारनौल का चतुर्मास समाप्त कर विहार करते हुए जमनापार पहुँचे। बिनोली वाले भाइयों की वीनति होने पर संवत् १९५१ का चतुर्मास गुरुदेव के संग बिनोली हुवा। यहाँ भाइयों में पंचरंगी आदि अच्छी तपश्चर्या हुई। चरित्रनायकजी ने भी प्रत्येक पर्वतिथिपर व्रत, वेला, तेला आदि की शुद्ध तपश्चर्या की और तपश्चर्या के साथ साथ ज्ञानाभ्यास भी अच्छा किया।

इस चतुर्मास से अगला संवत् १९५२ का चतुर्मास बड़ोत हुवा। चरित्रनायक जीका यह चतुर्मास भी ज्ञानाभ्यास, तपश्चर्या और गुरु सेवा आदि शुभ कार्यों से सफली भूत होकर बड़े महत्व का रहा।

## प्रकरण १५ वाँ

### चतुर्मास-१३-१४-सं० १९५५-५६—सिंघाणा, कानोड़ .

# ज्ञानाभ्यास

बड़ोत का चतुर्मास पूर्ण करके प्रत्येक गाँवमें धर्मोपदेश देते हुए सिंघाणे पधारे और संवत १९५३ का चतुमास भी गुरुदेव के साथ यहीं हुवा। इस चतुर्मास में गुरु श्री ने कुंजाका परिवार के १०—१२ घरोंको जैन धर्म का प्रतिबोध दिया। इसकार्यमें चरित्रनायक जी ने गुरु श्री की बन सकने लायक खूब ही सेवा की। प्रतिबोधित गृहस्थों को सामायिक संवर तथा प्रतिक्रमण आदि धार्मिक पाठ आपनेही सिखाए।

आपने इस चतुर्मास में भगवति सूत्रका अध्ययन किया। आपका यह भगवति सूत्रका अध्ययन बड़ीही स्पष्टता के साथ विवेचनात्मक रीति से हुवा। क्योंकि आपके गुरु श्री प्रातःकाल भगवति सूत्रका ही व्याख्यान दिया करते थे, जिससे आपको जटिल प्रश्नोंके समझने में बहुत बड़ी सहायता मिलजाया करती थी। वास्तव में ऐसे जटिल शास्त्रोंके समझाने के लिये यह पद्धति अतीव सुन्दर है। इस पद्धति से विद्यार्थी बड़ी विशदताके साथ शास्त्रका आन्तरिक ज्ञान प्राप्त करलेता है।

इस चतुर्मास के अनंतर १९५४ का चतुर्मास कानोड़ हुवा। यह चतुर्मास भी बहुत सुख शान्ति के साथ पूर्ण हुवा।

# प्रकरण १६ वाँ

## चतुर्मास १५—१६ संवत् १९५५—५६ सिंघाणा, नारनौल

## अकाल पीड़ितोंकी सहायता

संवत् १९५५ का चतुर्मास फिर सिंघाणे हुवा। इस चतुर्मास में कई ब्राह्मण विद्वानों को जैन धर्म से प्रेम हुवा। सिंघाणे के प्रसिद्ध सारस्वत ब्राह्मण वैद्य जवाहरलाल जी ने इस चतुर्मास में खूब सेवा भक्ति की। आप एक राजमानीते धनी, मानी वैद्य हैं। आप में सरलता और दयालुता का गुण विशेषरूप से है। आप गरीबों का मुफ्त इलाज़ करते हैं। आप चरित्रनायक जी के श्रद्धालु भक्त हैं। आप जैन धर्म को एक उच्च कोटिका धर्म मानते हैं। आपका जैन सूत्रों से तथा जैन स्तोत्रों से बहुत अधिक प्रेम है। आपके पास बहुत से प्राचीन हस्तलिखित जैन सूत्र तथा जैन स्तोत्र सुरक्षित विद्यमान हैं। आपके पुत्र कुंजबिहारीलाल जी और रामरक्षपाल जी भी जैन धर्म के पूर्ण प्रेमी हैं। और चरित्रनायक जी के अपने पिता के समान ही भक्त हैं।

इस से अगला चतुर्मास संवत् १९५६ का नारनौल में हुवा। दया धर्म का खूब उद्योत हुवा। यह चतुर्मास वह चतुर्मासथा

जब भयंकर अकाल के कारण प्रजा में हा हा कार मचा हुआ था। क्षुधा राक्षसी प्रतिदिन न मालूम कितने मनुष्यों को यमपुर पहुंचा देती थी। लोग सिर्फ़ मुट्ठी भर अन्न के दाणों पर सारा दिन काटने को तैयार थे पर वही मिलना मुश्किल हो रहा था। क्या दिन में, क्या रात में हर तरफ़ से हाहाकार की ही करुण-ध्वनि कानों में पड़ती थी। अस्तु-चरित्रनायक जी व चरित्र-नायक जी के गुरु श्री के उपदेश से इस चतुर्मास में अकाल-पिड़ितों को अच्छी सहायता पहुँचाई गई।

## सुधा-धारा

१ संशयात्मा अपने कार्य में कभी सफलता प्राप्त नहीं करसकता।

२ जो कर्म रहित मुक्तजीव हैं। उनका संसार के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं रहता। क्यों कि कर्म से ही सारी उपाधियां होती हैं।

३ आत्मोन्नति करनेका अवसर मिलनेपर आलस्य करना सबसे बड़ी भूल है।

"भगवान महावीर"

# प्रकरण १७ वां

## चतुर्मास १७ संवत १९५७ महेन्द्रगढ

## शिष्य-दीक्षा

नारनौल के चतुर्मास के अनंतर संवत् १९५७ का चतुर्मास कानोंड में हुवा। धर्म ध्यान की अच्छी लगन रही। भाईयों में बडा उत्साह रहा। चतुर्मास के बाद फाल्गुण शुक्ला पूर्णिमा के दिन यहीं महेन्द्रगढ़ में ही नारनौल निवासी श्री प्रथ्वी चन्द्रजी ने चरित्रनायक जी से दीक्षाली। दीक्षा बडी धूम धाम से श्री मान् दानवीर राजा बहादुर सेठ सुखदेवसहायजी के बावाजी की कलगी में हुई। दीक्षा का संपूर्ण व्यय आपही की तरफ से हुवा। दीक्षा महोत्सवपर आप हैदराबाद से यहाँ अपनी मातृ भूमी महेन्द्रगढ में आये थे। आप बडे दान वीर धर्म प्रेमी गृहस्थ थे। आपने अपने समय में जैन जातिकी एक आदर्श सेवा की। आपका एक लाख से भी कहीं अधिक द्रव्य पुस्तक प्रकाशन आदि शुभ कार्यों में व्यय हुवा है। आपने सर्वसाधारण के लाभार्थ भाषानुवाद सहित जैन शास्त्रों के प्रकाशन का विशाल आयोजन किया था।

परन्तु—खेद है आप इस शुभ कार्यकी संपूर्णता अपनी आँखों से न देख सके। आपका इसी समय के बीच में संवत् १९७४ में देहान्त होगया। आपके बाद आपके सुपुत्र ज्वालाप्रसाद जी ने आपके उठाए हुए इस कार्य को आपके विचारानुकूल पूर्ण किया। बाल ब्रह्मचारी श्री अमोलक ऋषिजी कृत भाषानुवाद सहित जैन शास्त्रों की यह पेटी प्रायः बहुतसे क्षेत्रों में पहुँची हुई है। शास्त्रप्रेमी जनता इससे आज अमूल्य लाभ उठारही है। ऐसे शुभ कार्यकारी परिश्रमी गृहस्थ तथा मुनियों से ही यह जैन समाज सभ्य संसार के सामने अपना मस्तक ऊँचा करता है।

## सुधा–धारा

१ जो घमंडी मनुष्य दूसरों को अपमानित करते हैं वे लक्ष्य भ्रष्ट होकर चिरकाल, संसार अटवी में भटकते रहते हैं।

२ हे मनुष्य जब तक श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना और स्पर्शेन्द्रिय की विज्ञान शक्ति क्षीण नहीं होती है तब तक तू अपना आत्मकार्य सिद्धी करले, फिर कुछ नहीं बन सकेगा।

"भगवान महावीर"

## प्रकरण १८ वाँ

### चतुर्मास–१८–१६–सं० १६५८–५९—हिलवाड़ी, दोघट

# धार्मिक–चमत्कार

विक्रम संवत् १९५८ का चतुर्मास गुरु श्री का तो बड़ोत हुवा और चरित्रनायक जी का नव दीक्षित के साथ हिलवाड़ी हुवा। इस चतुर्मास में भाइयों ने बड़े उत्साह के साथ धर्म ध्यान किया।

चरित्रनायकजी के व्याख्यानों का जैन जनता के अतिरिक्त अजैन जनता पर भी बड़ा प्रभाव पड़ा। आपके सदुपदेश से यहाँ सिब्बा नामक एक अन्धा नाई था, उसे अच्छा प्रतिबोध लगा। वह बराबर सामायिक संवर आदि धार्मिक क्रियाएँ करने लगा। आश्चर्य होताहै कि उसका कुछ ऐसा कर्म संयोग हुवा कि, धर्म के प्रभाव से उसकी अन्धता दूर होगई—उसे अच्छी तरह दीखने लगा। वह इसके लिए बहुत कुछ औषधियाँ कर कराकर अन्त-में निराश हो बैठ गया था। परन्तु, जिस समय उसने चरित्र-नायकजी से धर्म रूप औषधी ली, उस समय वह निहाल होगया।

वास्तव, में धर्म एक ऐसीही औषधी है। सद्गुरु वैद्य बाह्य और आन्तरिक दोनों रोगों को नष्ट करने के लिए सिर हो

हो कर रोगियों को यह धर्म रूप औषधी देतेहुए जगह जगह फिरते हैं। परन्तु-करें क्या यह औषधी कड़ी बहुत है। अतः बिरले-ही महानुभाव इस औषधी का सेवन करते हैं। जो सेवन कर लेते हैं वेतो सदा के लिए नीरोग होजाते हैं।

विक्रम संवत् १६५६ का चतुर्मास गुरु श्री के साथ दोघट हुवा। जनतामें धर्मकी अच्छी जागृति रही।

## सुधा-धारा

१ हे पुरुष अपना मित्र तू आप ही है किसलिये बाहिर के मित्रों की तरफ देखता है।

२ जिन्हों ने कषायाग्नि को शान्त करदिया है वास्तव में परम सुखी वेही कहलाते हैं।

३ अपने शरीर के साथ ही युद्ध करो दूसरे बाहर के युद्धों की तुम्हें क्या जरूरत है। युद्ध के योग्य ऐसा शरीर फिर मिलना बहुत मुश्किल है।

"भगवान महावीर"

## प्रकरण १९ वाँ

### चतुर्मास २०-२१ संवत् १९६०—६१ छपरोली, बिनोली

# पूज्य सोहनलाल जी से प्रेमालाप

दोघट का चतुर्मास पूर्ण करके चरित्रनायक भगवानपुर बामनौली आदि क्षेत्रों में धर्मोपदेश करते हुए छपरोली पधारे। इस क्षेत्रके जैन बंधुओं में कुछ धार्मिक शिथिलता आई हुई थी। आपने उपदेश देकर यह शिथिलता दूर की। संवत् १९६० का चतुर्मास भी भाइयों के अति आग्रहसे छपरोली में ही हुवा। इस चतुर्मास में आपने छपरोली में अच्छी जागृति की।

इस चतुर्मास में आपके उपदेशों से प्रभावित होकर छपरोली के प्रतिष्ठित श्रावक मुसद्दीलाल जी ने बारा व्रत और स्कंध (ब्रह्मचर्य धारण, रात्रि भोजन का त्याग,) किए।

यहाँ छपरोली से चतुर्मास पूर्ण करके विहार करते हुए लुहारे पहुँचे। यहाँ पंजाबी जैनाचार्य सोहनलाल जी से चरित्र-नायकजी की काँधले वाले भाई घमंडीलाल की प्रेरणा से

सम्वत्सरी के उदय पक्षपर कुछ घंटे तक बात-चीत हुई। अन्त में शान्तस्वभावी न्याय प्रिय पूज्य सोहनलालजी ने चरित्रनायकजी से कहा कि-वस्तुतः उदयपक्ष ही सिद्ध होता है। परंतु-हमारी परंपरा ऐसा नहीं मानती। हम परंपरा के अनुसार ही पर्वाधिराज का आराधन करते हैं। यहबात चीत परस्पर की कटुता से रहित थी दोनों तरफ से सभ्यताका सुंदर वर्ताव रहा। अस्तु, यहाँ से बिहार कर के बिनोली आए, संवत् १९६१ का चतुर्मास यहीं बिनोली हुवा। यहाँपर धर्मकी अच्छी प्रभावना रही। पँचरंगी आदि की खूब तपश्चर्या हुई।

यहाँ बिनोली में तुलसीराम नामक एक भव्य श्रावक थे। इनकी धर्म पर अच्छी रुचि थी। यह चरित्रनायकजी के पूर्ण श्रद्धालु श्रावक थे। चरित्रनायकजी से प्रतिदिन कहा करते कि-महाराज मैं अपने को धन्य उस समय समझूँगा, जिस समय मुझे अन्तसमय संथारा आजायगा। तभी मेरी यह करनी सफल होगी। बस, इस करनी का सफल करवाना आपके ही हाथ में है"। आखिर आशावादी श्रावक की आशा सफल हुई। इसी चतुर्मास में ही ये बिमार हुए। चरित्रनायक आलोयणा निन्दना करवाकर संथारा करवादिया। आत्मार्थी श्रावक तुलसीरामने इच्छानुसार अपना क्रियाकाण्ड सफल कर सद्‌गति प्राप्त की।

---

* पूज्य श्री के समक्ष जिस पक्ष का मंडन किया था। आज उसी पक्ष को श्री संघ के संप के लिए चरित्रनायकजी ने छोड़ दिया है।

## प्रकरण २० वां

### चतुर्मास २२ संवत १९६२ बहरोड़

# अलवर–विहार

विनोली का चतुर्मास पूर्ण करके बड़ौत कुताना आदि क्षेत्रों में धर्म प्रचार करते हुए नारनौल आए। यहाँ से गुरु श्री के संग अलवर को विहार किया। इस समय इस प्रान्त में प्लेगने भीषण रूप धारण कर रक्खा था। गाँव के ब्राह्मण वैश्य आदि लोग गाँवके बाहर झूँपड़ियों में रहने लगे थे। गाँवों में आहार पानी का योग मिलना भी मुश्किल हो रहा था।

अस्तु—नारनौल से बहरोड़ पधारे। प्लेग के कारण बहरोड़ के जैन भाई सब गाँव के बाहर जंगल में झूँपड़ियाँ बाँधे हुए रहते थे। चरित्रनायकजी भीतर गाँव में ठहरे। आहार पानी गाँव से बाहर झूँपड़ियों में से लाए। यहाँ दोपहर ठहर कर संध्या समय "धेलावास" नामक गाँव में पहुँचे। एक वैष्णव बणिया की दुकान में ठहरे। लग भग दो घड़ी दिन बाकी था। इतनेमें ही गांव का लंबरदार पांच चार आदमियों को लेकर बनिये के पास आया और उसे धमकाने लगा कि, तैंने प्लेग के गांवों में

से आए हुए इन साधुओं को अपने यहां क्यों ठहराये ? क्या तू अपने गाँव में भी यों ठहरा कर प्लेग फैलावेगा ? खबरदार ! इन साधुओं को हम गांव में नहीं ठहर ने देंगे। राजी खुसी क्यातो इन्हें दुकान से निकाल दे ? नही देखलें तू मुझे जानता है, ठीक नहीं होने का" ।

विचारे बाणये ने लंबरदार की बहुत खुशामद की और उसके पैरों में पगड़ी धरकर कहा कि लंबरदार ! ऐसा न करो ! ये साधु मेरे यहां सिर्फ रात२ रहेंगे और बस सूर्योदय होते ही चले जायँगे। इतने में क्या विगाड़ होता है ? दिन छुपने वाला है इस समय यह कहाँ जायँगे ? पर वहाँ विचारे बनिये की कौन सुनने वालाथा ? वहाँ तो अधिकार की उन्मत्तता के कारण लंबरदार के कान बहरे होरहे थे। चरित्रनायकजी ने भी लंबरदार-को बहुत समझाया पर वह न माना। आखिर सब मुनि वहाँ से चल दिए। थोड़ाही दिन बाकी रह गया था। गाँव से उलटे हटकर एक माइल की दूरीपर पहाड़ के पास सुनसान जंगलमें एक नोदेवियों के नाम से एक स्थान है। वहाँ आकर ठहरे। सूर्यास्त होजाने पर एक मुसाफिर आया उसने कहा बाबाजी गांव में क्यों न ठहरे ? यहां तो ठहरना ठीक नहीं है। यह जो नोदेवियों का कूँवा है। इसके खेल कोठे में पानी पीने के लिये पहाड़ से शेर बघेरा आदि हिंसक जीव आते हैं। सो कहीं आप लोगों को चोट न पहुंचावें। पहले भी यहां पर एक, दो बाबाजी योंही मारे जा चुके हैं।

चरित्रनायक जी ने कहदिया भाई कुछ ही हो अबतो यहीं ठहरेंगे सूर्यअस्त होजाने के बाद हमलोग कहीं नहीं आते जाते।

यदि जिन्दगी है तो कुछ डर नहीं। यदि जिन्दगी नहीं है तो फिर भी कुछ डर नहीं दोनों हाथा लड्डू हैं।

मुसाफिर चला गया। मुनिमण्डल आनन्द के साथ इसी भयावह स्थान पर ठहरा रहा। सूर्योदय होतेही विहार करके हरसोरे पहुंचे। यहां दस पंद्रह दिन ठहरे। धर्म ध्यान खूब हुवा। साधुओं के न आने जाने से जो शिथिलता आई हुईथी वह दूर हुई। धार्मिक एवं सामाजिक दोनोंही प्रकार के त्याग आदि हुए। यहाँ से बीच के अनजान गाँवों में कठिनता का सामना करते हुए अलवर पधारे। यहाँ पर भी प्लेग होरही थी। शहर में हाहाकार मचा हुवा था। पर जैन भाईयों मे शान्ति थी। यहाँ पर एक महिने ठहरे। बीमारी के कारण खूब ही धर्म ध्यान हवा। जबतक ठहरे तबतक प्रतिघर नित्यप्रति एक आंबिल तो होता ही रहा। अन्य तपश्चर्या हुई वह न्यारी। इस समय अलवर में प्लेग के कारण इधर उधर से करीब २०-२१ साधु साधवी आए हुए थे। भिन्न-भिन्न संप्रदायों के होने पर भी सब का परस्पर एक आदर्श प्रेम रहा। यहाँ से फिर उलटा नारनौल को ही विहार करते हुए संध्या समय थोड़ा सा दिन रहे धोलीदूब नामक गाँव है वहाँ आए। गाँव के बाहर दादू पंथियों का मन्दिर था उसमें ठहरना चाहते थे। पर मन्दिर के महन्त बाबाजी ने नहीं ठहरने दिये। गाँव में भी स्थान का योग न मिला। अत: यहाँ से एक कोस चलकर जंगल में पहाड़ के पास ही एक तिबारा और एक कूँवा था वहाँ आए। कूँवा चलाने वाले जमीदारों से तिबारे में ठहरने की आज्ञा माँगने पर उन्होंने कहा बाबाजी ठहरजावो। हमारा तो कुछ हर्ज नहीं। पर यहाँ

कूवे की खेल में रात को पानी पीने के लिए शेर आता है। सो तुम्हारे आदमीयों का नुक्सान हो जायतो हम जिम्मेदार नहीं है। अपना भला बुरा देखलो। चरित्रनायकजी जमीदारों से यह कहकर ठैर गए कि, "भाई अपना भला बुरा सब हमने देखलिया है, तुम कुछ फिकर मतकरो। हमारा चाहें किसी भी प्रकार का नुक्सान हो तुम दोषी नहीं हो" तिबारे के पास ही थोड़ी सी दूर एक छोटासा बाग़ था। सूर्यास्त होने पर उसका माली इस तरफ़ आया। उसने भी कहा कि "बाबाजी यहाँ तो ठहरना ठीक नहीं यहाँ ठहरने में तो मौतका ख़तरा है। आप मेहरबानी करके मेरे बाग में चले चलें। वहां अपना इन्तजाम का मकान है। जिसमें मैं रहता हूँ। आपभी उसी मकान में ठहरना। वहाँ आपको किसी प्रकार का खतरा नहीं होगा"।

चरित्रनायक जी ने जवाब दिया कि—भाई! अब सूर्य-अस्त होचुका है। अतः हमारे धार्मिक नियम के अनुसार हम अब तुम्हारे मकान पर नहीं जा सकते। जो कुछ होना होगा वह यहीं होगा, विधिकी गती अटल है। जिन्दगी की और मौत की हमें कुछ चिन्ता नहीं। हम जीवेंगे तो हंसते हंसते जीवेंगे और मरेंगे तो हंसते हंसते मरेंगे। जिन्दगी से हंसना और मौत से रोना साधुपने से बाहिर है"।

गुरु श्री के कहने पर चरित्रनायक जी ने बागवान को जीव हिंसा का और मद्यपान का त्याग करवाया। बागवान अपने स्थान पर चलागया और साहसी मुनि मण्डल उसी खुले तिबारे में सानन्द ठहरा रहा। गुरु श्री और चरित्रनायक जी

क्रमशः सारी रात जागते रहे। सिंह व्याघ्र जरख आदि हिंसक जीव पानी पी-पी कर सीधी राह दहाड़ते हुए चले गए। मुनि मण्डल को इनसे कुछ भी ख़तरा नहीं हुवा। प्रातःकाल होते ही बिहार करके हरसांरे पहुंचे। हरसांरे से बहरोड़ पधारे। यहां चरित्रनायक जी के सदुपदेशों का जनतापर बड़ा प्रभाव पड़ा। बहुत से त्याग हुए। भाइयों में बहुत उत्साह- रहा। बर्मा के रंगून शहर में रहनेवाले बहरोड़ के भाई चिरंजीलाल- जी तो चरित्रनायक जी के व्याख्यानों से बहुत ही प्रभावित हुए। ब्रह्मचर्य सम्बन्धी व्याख्यान को सुनकर इन्होंने चरित्रनायक जी से आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। अस्तु—संवत् १९६२ का चतुर्मास भी चरित्रनायक जी ने बहरोड़ वाले भाइयों के विशेष आग्रह से यहीं बहरोड़में ही किया। यह चतुर्मास धर्म- ध्यान से विशेष महत्व का रहा। अजैन जनता का भी जैन धर्म से खूब प्रेम रहा। प्राय: सभी भाइयों को अनछाना पानी और रात्रि भोजन आदि का त्याग करवाया। चरित्रनायक जी ने यह चतुर्मास जैन मन्दिर में किया था। अतः पाठक जान सकेंगे कि, चरित्रनायकजी का हृदय साम्प्रदायिक मत भेदों से कितना अलहदा है।

# प्रकरण २१ वाँ

## चतुर्मास २३ संवत् १९६३ खेतड़ी

## दीवानजी की श्रद्धाभक्ति

बहरोड़ के चतुर्मास के अनंतर संवत् १९६३ का चतुर्मास खेतड़ी हुवा। यहाँ जैन बँधुओं में बिल्कुल सुस्ती आई हुई थी। सबके दिलों से सनातन जैन धर्म की श्रद्धा शिथिल होरही थी। धार्मिक क्रिया काण्ड से सब अनभिज्ञ होरहे थे। चरित्रनायक जी ने खेतड़ी की इस धार्मिक स्थिति को फिर सुव्यवस्थित की। इस चतुर्मास में सनातन जैन धर्म की खूब उन्नति हुई। कई ऐसे भाइयों को प्रतिबोध दिया जो सनातन जैन साधुओं से घृणा किया करते थे।

**बसन्तीलाल**— यह भाई मूर्ति पूजक श्वेताम्बर जैन थे, खेतड़ी नरेश के प्रतिष्ठित कर्मचारी थे। कुछ कारणों से इनकी जैन धर्म से श्रद्धा हटगई थी। धर्म के नाम से ये चिढ़ा करते-थे। किसी साधु संत को अपने घरमें नहीं बढ़ने दिया करते-थे। स्वयं चरित्रनायक जी के गुरुश्री जीको ही एक समय इन्होंने गोचरी के लिए अपने घर में नहीं आने दिया था

अस्तु—येही चतुर्मास से चरित्रनायक जी के सत्संग में आकर भगवान महावीर के कट्टर श्रद्धालु भक्त बनगए। जिन शासन पर इनकी अटल श्रद्धा होगई। चरित्रनायक जी ने इनको नित्य प्रति सामायिक करने का जीवन भर के लिये नियम करवा दिया। ये एकान्त स्थान में विधिपूर्वक मौन से सामायिक करने लगे।

सचमुच सत्संगतिकी महिमा अपार है। सत्संगति में जो महाशक्ति है वह संसार में कहीं कल्पोंतक ढूंढने पर भी नहीं मिलेगी। सत्संगति मनुष्य को कहीं से कहीं ले पहुंचती है। अधम से अधम पुरुष भी सत्संगति के कारण उत्तम से उत्तम पुरुष बनजाता है। वैष्णव धर्म में खूनी भील नारदजी के संगसे ऋषिराज वाल्मीक बनजाता है तो जैन धर्म में कुहनी तक खूनसे सने हाथों वाला प्रदेशी राजा केशीकुमार जी के सङ्ग से प्राणापहारी अपराधी का भी कल्याण चाहने वाला बनजाता है। साधु सङ्ग में वह अद्वितीय अमृतरस है। जो क्षणभर में सुखमय अमर जीवन बनादेता है। साधु सङ्गति के सुख के लिए भक्तराज कबीर क्याही अच्छा कहगए हैं:—

"राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय
जो सुख साधु सङ्गमें, सो वैकुंठ न होय"

दीवान जी—इस चतुर्मास में खेतड़ी नरेश के दीवान शोभालाल जी भी चरित्रनायक जी के पूर्ण श्रद्धालु भक्त बने। आप मूर्तिपूजक श्वेताम्बर जैन थे। पर आपको अपने जैन धर्म

के विषय में कुछ भी लगन नहीं थी। जैन धर्म की कितनी ही बातों को आप अश्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। जिस समय आप चरित्रनायक जी के सत्सङ्ग में आए तो, आपके जैन धर्म विषयिक भ्रम पूर्ण विचार दूर होगए और आपकी भगवान महावीर के प्रवचनों पर दृढ श्रद्धा होगई। आप प्रतिदिन चरित्रनायक जी के दर्शन करने के लिए आने लगे और जैन धर्म सम्बन्धी क्रियाकाण्ड करने लगे।

## सुधा—धारा

१ "दूसरे को दुःख नहीं होता बल्कि अपने को ही दुःख होता है। दूसरे को सुख नहीं होता बल्कि अपने को ही सुख होता है"

इस भावना में अमर जीवन छुपा हुवा है। जो भावना के पूर्ण बलवान हो जाने पर अपने आप पूर्ण रूपेण प्रगट होजाता है।

२ सत्य वादी महा पुरुष माता के समान विश्वसनीय, गुरु के समान पूज्य और स्वजन के समान सबका प्रिय होता है।

३ अपरिचित परलोक में रक्षा के लिए कोई साथ नहीं जाता; केवल एक अपना मित्र धर्म ही साथ जाता है।

"भगवान महावीर"

## प्रकरण २२ वाँ

चतुर्मास २४-२५ संवत् १९६४—६५ बड़ोत, बिनोली

### प्रश्नोंका उत्तर

खेतड़ी का चतुर्मास पूर्ण करके गाँवों में धर्मोपदेश देते-हुए चरित्रनायक जी बड़ोत पधारे। संवत् १९६४ का चतुर्मास यहीं बड़ोत में हुवा। भाइयों ने बड़े उत्साह के साथ धर्म ध्यान किया। चरित्रनायक जी ने भी अन्य तप के अतिरिक्त श्रावण और भाद्रव के महिने में एकान्तरोपवास किए।

यह चतुर्मास समाप्त करके अन्यक्षेत्रों में धर्मोपदेश देते-हुए बामनोली होकर सिरसली पधारे। यहाँ बिनोली के भाई चरित्रनायक जी के दर्शनार्थ आए और आग्रह करके अपने यहाँ बिनोली लेगए। यहां संवगी साधु वल्लभ विजयजी ठहरे हुए-थे। इन्होंने खिवाई गांव वाले भाई सितावराय को कुछ प्रश्न लिखकर दे रक्खेथे और कह रक्खा था कि, यदि कोई ढूँढिया साधु मेरे इन प्रश्नों का उत्तर दे देगा तो, मैं मुखवस्त्रिका बांध लूँगा।

सितावराय ये प्रश्न लेकर चरित्रनायक जी के पास आए और प्रश्नों का † उत्तर लेकर वल्लभ विजयजी के पास गए। वल्लभ विजयजी ने उत्तर पत्र का कोई खण्डन नहीं किया और मुखवस्त्रिका बाँधने के विषय में वही जवाब देदिया जो दुनियाँ मतपक्ष में दिया करती है।

संसार में मतपक्ष का रोग बड़ी बुरी तरह से फैलता जारहा है। बड़े-बड़े धुरंधर विद्वान इस आपस की पक्षा पक्षी में आकर वास्तविक सत्य का निर्णय नहीं कर पाते हैं। अफसोस! एक पिता की संतानें इस प्रकार आपस में लड़रही हैं कि, क्या कोई शत्रु लड़ेंगे। क्या ही अच्छा हो कि, हम परस्पर प्रेम से एक जगह बैठ कर जो निर्णय करना हो करलिया करें। हम सबकी भलाई इसी में है।

अस्तु— बिनोली वाले भाइयों के विशेष आग्रह से चरित्रनायक जी का संवत १९६५ का चतुर्मास बिनोली में हुआ। श्रावकों में धर्म ध्यान का प्रसंशनीय उद्योग रहा। इस चतुर्मास में भी चरित्रनायक जी ने श्रावण और भाद्रव के महिने में एकान्तरोपवास किए। अन्य मत बेला आदि तपश्चर्या हुई वह अलग।

---

† ये प्रश्न उत्तर लिखित विद्यमान हैं। परन्तु यह समय संपका है अतः इस पुस्तक में इसको लंबा रूप नहीं देते हैं।

# प्रकरण २३ वाँ

चतुर्मास २६-२७-२८ संवत् १९९६—९७—९८

महेंद्रगढ़, खेतड़ी

## ब्राह्मण विद्वानोंकी श्रद्धा

बिनोली का चतुर्मास पूर्ण करके लुहारी, कुताना, पीपलीखेड़ा, राजपुर, पानची,पुर, जूँवा, गूणा, काहनी, रोहतक, कलानोर, दादरी आदि आदि क्षेत्रों में जैन धर्म की जागृति करते-हुए कानोंड पधारे। संवत् १९९६ का चतुर्मास कानोंड में ही हुवा। धर्म ध्यान क्षेत्रा नुसार अच्छा हुवा। बहुत से भाइयों ने रात्रि भोजन अनछानापानी सप्तव्यसन आदि का त्याग किया।

कानोंड़ का चतुर्मास समाप्त कर सिघाणा होकर खेतड़ी पधारे। व्याख्यान दिया गया। जैन अजैन दोनों जनता की अच्छी उपस्थिति हुई। चरित्रनायकजी के पूर्ण श्रद्धालु भक्त दीवान साहाब शोभालाल जी ने एक दिन शास्त्रीय विषयों पर बात-चीत होते हुए चरित्रनायकजी से कहा कि:- महाराज! आपके शिष्य श्री पृथ्वीचन्द जी माहाराज की बुद्धि बहुत अच्छी है। अत: आप इन को संस्कृत पढाइये ताकि, यह अपने समय के एक योग्य विद्वान साधु बनें। हमारे यहाँ संस्कृत पढ़ाने का योग-अच्छा है।

चरित्रनायक जी की यह इच्छा पहले सेही थी। पर कहीं ठीक योग नहीं मिलता था। अस्तु, अब दीवान जी की प्रेरणा से श्री पृथ्वीचन्द्र जी महाराज संस्कृत भाषा का अध्ययन करने लगे। पं० सागरमल जी दाधिमथ निश्चित समय पर आकर सिद्धान्त कौमुदी आदि पाठ्यग्रन्थ पढ़ाने लगे।

इसी संस्कृताध्ययन के कारण संवत् १९६७ व १९६८ के दोनों चतुर्मास लगते खेतड़ी ही हुए। इस समय में चरित्र-नायक जी ने धर्म की अच्छी वृद्धि की। खेतड़ी राज्य के प्रतिष्ठित कर्मचारी नारायण दास तहसीलदार, गुलाबराय अफ़सर कोठी, बसंतराय खज़ानची आदि वैष्णव धर्मावलंबी सज्जन भी चरित्र-नायक जी के श्रद्धालु भक्त और जैन धर्म के प्रेमी बने।

राज ज्योतिषी पं० सीताराम, व्याकरणाचार्य पं० नारायण दास, पं० गौरीशंकर, पं० हरलाल, पं० देवीसहाय जोशी आदि बहुत से ब्राह्मण विद्वान भी चरित्रनायक जी के प्रेमीभक्त बने। पं० सीताराम जी की चरित्रनायक जी से जैन धर्म व अन्यान्य धर्मोंपर बड़ी ही विचार पूर्ण बातें होती रहती थी जो बहुत ही धार्मिक रुचिकर हैं। परन्तु, विस्तारभय से यहाँ नहीं लिखी जाती हैं।

# प्रकरण २४ वां

**चतुर्मास २९-३०-३१-३२- संवत १९६९-७०-७१-७२**
**नारनौल, खेतड़ी, नारनौल महेन्द्रगढ़**

## धार्मिक-जागृति

विक्रमाब्द १९६९ का चतुर्मास नारनौल में हुवा। इस चतुर्मास में बहुत से वैष्णव भाइयों को जैन धर्म की लगन लगी। ये सब सामायिक संवर आदि धार्मिक क्रियाएँ करने लगे। देवीदयाल सर्रा मुख्तार तो नवकार मंत्र के ऐसे विश्वासी बने-कि, ऐसा क्या कोई जैनी बन सकेगा ?

यहाँ के दिगम्बर जैन भाइयों को भी आपने ही धर्म की वास्तविक लगन लगाई। रात्रि भोजन अनछाना पानी सप्त-व्यसन आदि के जैनत्व सूचक त्याग कराए। प्रतिदिन नवकार मंत्र, भक्तामर आदि का पाठ करने के नियम कराए।

यह चतुर्मास समाप्त कर फिर पढ़ाई के लिए खेतड़ी पधारे। संवत् १९७० का चतुर्मास भी यहीं किया। श्री पृथ्वीचन्द्र-जी महाराज ने वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी, रघुवंश, किरात आदि संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन करके संस्कृत भाषा की खासी योग्यता प्राप्त की।

खेतडी का चतुर्मास पूर्ण करके विहार करते हुए जमनापार जाने के इरादे से नारनौल पधारे। परन्तु यहाँ आनेपर आप-श्री के शिष्य पं० श्रीपृथ्वीचन्द्र जी महाराज के पैरों में बात व्याधि होगई। अतः संवत् १९७१ का चतुर्मास यहीं हुवा। साधु मर्यादा से बहुत कुछ चिकित्सा हुई लेकिन कुछ आराम न हुवा। आखिर माह के महिने में आकर भाईयों ने सिंघाणे के वैद्य जवाहरलाल जी को खबर दी। खबर होते ही वैद्य जी नारनौल आए। चिकित्सा की गई। व्याधि शान्त हुई। व्याधि शान्त होजाने पर कानोंड (महेन्द्रगढ़) पधारे। संवत् १९७२ का चतुर्मास भी यहीं महेन्द्रगढ़ में ही हुवा। क्षेत्रानुसार धर्म ध्यान भी खूब अच्छा हुवा।

## सुधा–धारा

१ मनुष्यों की तो बात क्या! देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर भी ब्रह्मचारी महापुरुष को भक्ति–भाव पूर्वक नमस्कार करते हैं।

क्योंकि-जो ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं वे वास्तव में बड़ा ही दुष्कर कार्य करते हैं।

२ राग और द्वेष ही कर्मके बीज हैं। अतः इनको अध्यात्म-विद्यासे भष्म किए बिना मोक्ष सुख नहीं प्राप्त होसकता।

३ सदाचार ही जीवन है। सदाचार के बिना जीवन ऐसा ही है जैसा कि बिना तैल के दीप शिखा।

"भगवान महावीर"

# प्रकरण २५ वाँ

## चतुर्मास-३३-३४-सं० १९७३-७४ -बिनोली, रठोड़ा

## अजैनोंका जैन धर्म से प्रेम

चतुर्मास पूर्ण करके बसई दादरी होते हुए बूंद पधारे। यहाँ बूंद में जैन का एक भी घर नहीं है। इधर—उधर आते जाते साधु गांव के बाहर ही ठहरा करते थे। चरित्रनायक जी भी पहले एक दो दफा मौका पड़ा बाहर ही ठहरे। अबके आप दादरी से ही गाँव के भीतर ठहरने का निश्चय करके आए थे।

अस्तु—आपबूंद के प्रसिद्ध धनी वैश्य भूरामल के मकान पर ठहरे। व्याख्यान होने पर ब्राह्मण, वैश्य, जाट, अहीर, मुसलमान आदि लोगों ने हुक्का, भंग, गाँजा सप्तव्यसन आदिका त्याग किया। श्रोताओं के प्रबल आग्रह से विशेष लाभ जानकर आप यहाँ दो दिन ठहरे। यहाँ से कलानोर, रोहतक, धामड़ होकर रिठाल पहुँचे। यहां आठदिन ठहरे। अजैन जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा। बहुतसे सदाचार सम्बन्धी त्याग, नियम हुए। पिलाणा वाले भाई छोटेलाल जी की कुंडा पंथ सम्बन्धी मान्यताओं का निराकरण करके जैन धर्म की श्रद्धा शुद्ध करवाई। यहाँ से गूहणा, जूँवा, पुर, पीपली खेड़ा आदि क्षेत्रों में होते हुए बिनोली पधारे। संवत १९७३ का चतुर्मास

यहीं बिनोली में हुवा। इस चतुर्मास में भगवतिसूत्र बाँच। पँ० हरगुलाल, लालचन्द आदि जैन सिद्धान्त के ज्ञाता श्रावकों ने भगवतिसूत्र के व्याख्यान में अच्छी दिलचस्पी ली।

बिनोली का चतुर्मास पूर्ण करके खिवाई, दोघट, निरपड़ा, परासोली, लिसाड़, काँधला होकर तीतरवाड़ा पधारे। यहाँ-परस्पर में चिरकाल से पड़ी हुई फूट को मिटा कर संप की स्थापना की। यहाँ से गंगेरु पधारे। यहाँपर भी फूट के कारण कुछ भाई सनातन जैन धर्म से पतित होकर विधर्मी होने को तैयार होरहे थे। सो आपने उपदेश द्वारा समझा कर सबका परस्पर मेल करवाया। यहाँ से रठोड़ा, छपरोली होकर बड़ोत पधारे। यहाँ रठोड़े वाले भाइयोंने आकर विशेष आग्रह से अपने यहां चतुर्मास करने की स्वीकृति ली। अस्तु, संवत १९७४ का चतुर्मास यहीं रठोडे हुवा। जैन धर्म की खूब प्रभावना हुई। तपश्चर्या भी खूब हुई। चरित्रनायक जी के शिष्य श्री पँ० "पृथवीचन्द्र जी" महाराज का व्याख्यान होता रहा। व्याख्यान में ३००—४०० मनुष्यों की उपस्थिति होती रही। जाटों का जैन धर्म से अतीव प्रेम रहा। बहुत से जाट तो जैन धर्म के सामायिक संवर दया पोषध आदि व्रतभी करने लगे। बहुत से जाटों ने बाड़ पत्ती फूँकने का, खेतमें बड़ेहुए डंगर ढोर को मारने का, कसाई को गाय आदि पशु देने का, हुक्का भंग गांजा आदि पीने का, जूवा सट्टा आदि करने का त्याग किया। यहाँ के सुनारों को भी जैन धर्म की खूब लगन लगी। रामकला हरगुलाल सुनार को चरित्रनायक जी ने प्रतिक्रमण सिखाया।

# प्रकरण २६ वाँ

## चतुर्मास ३५-३६ संवत् १९७५—७६

## गंगेरू—छपरोली

# धर्म प्रचार और दीक्षा

रठोड़े का चतुर्मास पूरा करके हलालपुर पधारे। यहाँ व्याख्यान में जाटोंने अच्छा भाग लिया। ब्रह्मचर्य की महिमा सुनकर व्याख्यान में ही खड़े होकर एकजाट ने जीवन भर के लिए ब्रह्मचर्य व्रतका नियम लिया। भाई साँमलराम अग्रवाल वैश्यने चरित्रनायक जी से सम्यक्त्व ग्रहण की। यहाँ से बड़ौत होते हुए हिलवाड़ी पधारे। यहाँ बहनों को मिथ्यात्व पूजन का नियम कराया। यहाँ से बिनोली पधारे। यहाँ मुनि श्री देवीलाल जी मारवाड़ी मिले। परस्पर बड़ा प्रेमरहा। यहाँ से बिहार करते हुए धर्मोपदेश देते हुए गंगेरू पहुँचे। संवत् १९७५ का चतुर्मास यहीं हुवा। धर्म ध्यान तपश्चर्या आदि खूब हुवा। भरतु नामक एक झीवरने ९ दिन का अनशन व्रत किया।

चतुर्मास समाप्ति पर बिहार करते हुए छपरोली पधारे। यहाँ चिरकाल से पड़ी हुई फूट को मिटा कर सब भाईयों का परस्पर संप करवाया। भाईयों के बिशेष आग्रह से चतुर्मास की स्वीकृति देकर बिनोली पधारे। यहाँपर भी परस्पर की

फूट को मिटाकर संप करवाया। इस संप के कराने के लिए चरित्रनायक जी को एक महिना यहाँ ठहरना पड़ा। यहाँ से विहार करके स्वीकृति के अनुसार संवत् १९७९ का चतुर्मास छपरोली का किया। श्रावक वर्ग में प्रसंशनीय उत्साह रहा। धर्म वृद्धि खूब हुई।

छपरोली का चतुर्मास समाप्त कर विहार करते हुए गंगेरू पधारे। यहाँ माह सुदि दशमी के दिन भाव चारित्री अमरचन्द्र-जी की दीक्षा हुई। यह दीक्षित चरित्रनायक जी के शिष्य पं० श्री पृथ्वीचन्द्र जी महाराज के शिष्य बने।

## सुधा—धारा

१ यदि आत्मा से महात्मा और महात्मा से परमात्मा बनने की उत्कंठा है तो दृढता के साथ अपने कर्तव्य का पालन करते चले जावो। कर्तव्य पालन में क्षण मात्र भी प्रमाद मतकरो। क्योंकि प्रमाद ही अधः पतन का कारण है।

२ जो सत्पुरुषों के प्रवचनों पर श्रद्धा सहित चलते हैं। वेही विमलात्मा अन्त में क्लेशरहित होकर संसार सागर का पार पाते हैं।

३ संसार मे रोता हुवा कुत्ते की मौत कौन मरता है! जो सतपुरुषों के प्रवचनों को सच्चे नहीं समझता है।

४ किंपाक फल के समान, संसारिक भोग विलासों का अन्तिम परिणाम सुखा वह नहीं होता।

"भगवानमहावीर"

## प्रकरण २७ वाँ

### चतुर्मास ३७ संवत् १६७७ बिनोली

# गुरु श्री का स्वर्गवास

गंगेरू से दीक्षा देकर काँधला एलम होते हुए बड़ौत पधारे। संवत् १६७७ का चतुर्मास गुरु श्री मंगलसेन जी महाराज का तो श्री रघुनाथदास जी के साथ यहीं बड़ौत में हुवा और चरित्रनायक जी का बिनोली वाले भाइयों के विशेष आग्रह के कारण गुरु श्री की आज्ञा से बिनोली हुवा।

चरित्रनायक जी के गुरु श्री को व्याधि तो पहले से ही चली आरही थी। परन्तु—श्रावण सुदि में आकर वह अधिक प्रबल होगई। खबर होते ही आप गुरु श्री की सेवा के लिए बड़ौत आए। आपने गुरु श्री की सेवा करके अपने शिष्य कर्त्तव्य का समुचित रूप से पालन किया। साधु मर्यादा के भीतर समुचित उपचार होता रहा। पर गुरु श्री का स्वास्थ्य ठीक होने के बजाय अधिकाधिक बिगड़ता ही चला गया। आखिर द्वितीय श्रावण बदि एकादशी मंगलवार दिन के गुरु श्री संथारा पूर्ण करके स्वर्गस्थ हुए।

देहान्त की खबर होते ही प्रायः सभी सम्प्रदायी लोग एकत्रित होगए। दिगम्बर जैन हाईस्कूल बंद कर दिया गया।

स्कूल के समस्त मास्टर व समस्त छात्र दाहक्रिया में संमिलित हुए। क्या मुसलमान, क्या वैष्णव, क्या आर्यसमाजी, क्या दिगंवर जैन सभी लोग विमान के साथ थे। सभी के हृदय पर इस दुःख की वेदना थी। सभी संप्रदायों के सहयोग के साथ लग भग ३०००—४००० हजार मनुष्यों की उपस्थिति में अग्नि-संस्कार किया गया। श्रावक सुलतानसिंह अतरसेन वेहवामल फकीरचन्द आदि ने इस अवसर पर श्रावकोचित कर्तव्य का बड़े उत्साह के साथ पालन किया। दिगंवर जैन बंधुओं का भी इस अवसर पर स्थानक वासी जैन बंधुओं के साथ एक प्रशंसनीय आदर्श सहयोग रहा। क्या ही अच्छा हो, यदि इस प्रकार समस्त जैनी अपने मत भेदों को भुला कर आपस में एक दूसरे को सहयोग दें? गुरु श्री के स्वर्ग वास के बाद चरित्रनायक जी बिबोली पधारे। चतुर्मास बड़े आनन्द के साथ पूर्ण हुवा। धर्म ध्यान अच्छा हुवा।

# प्रकरण २८ वाँ

## चतुर्मास ३८-३९ संवत् १९७८—७९ नारनौल

## सामाजिक सुधार

विनोली का चतुर्मास समाप्त कर विहार करते हुए छपरोली के घाट जमना नदी उतर कर देहरा माहवटी पधारे। यहाँ परभी फूटको मिटाकर श्री संघ में एकता करवाई। यहाँ से झिझारा की गढी जुँवा रोहतक आदि क्षेत्रों में धर्मोपदेश देते हुए नारनौल पधारे। संवत् १९७८ का चतुर्मास भी यहीं हुवा। क्षत्रानुसार धर्मध्यान भी अच्छा हुवा। कुछ लोगों ने इस चतुर्मास में धार्मिक विरोध उठाया। पर अन्तमें वेही चरित्रनायक जी के प्रेमी भक्त बन गए।

इस अगला संवत् १९७९ का चतुर्मास कानोड वाले भाईयों ने मनवाया था। परन्तु- नारनौल वाले भाईयों की बीनति पर आषाढ में नारनौल पधारे कि-श्री पृथ्वीचन्द्र जी महाराज के पैरों में बातव्याधि होगई। अतः यह चतुर्मास भी व्याधि वश यहीं नारनौल में ही हुवा। आषाढ़ में यह व्याधि हुई थी और पोष में जाकर यह शान्त हुई। बिहार करने का बिचार हो ही रहा था कि, इतने में ही देहली से लाला गोकुलचन्द्र जी जौहरी का पत्र

आया कि:-इस समय सोनीपत में धर्म प्रचारार्थ मुनि राजों के आने की ज़रूत है। अतः आप सोनीपत को विहार करें तो बड़ी कृपा होगी। आपके जाने से वहाँ धर्म वृद्धि होने की पूरी संभावना है।

पत्र प्राप्त होते ही चरित्रनायक जी बिहार करते हुए बड़ी कठिनता से सोनीपत पहुँचे। सनातन जैन धर्म की अतीव प्रभावना हुई। करीब बीस घर स्थानक वासी जैन बने। इस कार्य-में बीर शासन भक्त श्रावक बर गोकुलचन्द जी जोंहरी सुलतानसिंह जी बड़ोत म्यादरमल जी बिनोली आदि का अत्यधिक प्रसंशनीय प्रयत्न रहा। यहाँ से पीपली खेड़ा, देहरामाहवटी आदि क्षेत्रों में होते हुए बड़ोत पधारे। यहाँ सुलतानसिंह अतरसेन नोनिधराय आदि समस्त श्रावकों के आग्रहसे चतुर्मास की स्वीकृति देकर हिलवाड़ी पधारे। यहाँ मेवाड़ी एक लिंगदासजी-की संप्रादाय के मुनि श्री मोतीलाल जी से मिलना हुवा। परस्पर बड़ा प्रेमरहा। दोनों व्याख्यान एक ही स्थान पर हुए। यहाँ से बामनोली होकर बिनोली पधारे। यहाँ के श्री संघ से विवाह में वा अन्य किसी कार्य में वेश्या, भांड, सांगी आदि के तमासे नहीं कराने की लिखित प्रतिज्ञा करवाई। यहाँ से सिरसली पधारे। यहांपर भी उपदेश देकर श्री संघ से पूर्वोक्त तमासे नहीं कराने की लिखित प्रतिज्ञा करवाई। यहां से स्वीकृति के अनुसार बड़ोत पधारे। संवत् १९८० का चतुर्मास यहीं बड़ोत में हुवा। धर्म ध्यान खूब हुवा। तपश्चर्या खासी हुई।

—:०:—

# प्रकरण २९ वाँ

चतुर्मास ४१-४२-४३संवत् १९८१-८२-८३

बिनोली, श्यामली, दोघट

## धर्म-प्रचार

बड़ोत का चतुर्मास पूर्ण करके कुताना पधारे, कुताना से कुपरोली, रठोड़ा, किरठल होते हुए गंगेरू पधारे। यहाँ आए हुए पाँच चार दिन ही हुए थे कि, बड़ोत से श्रावक सुलतानसिंह-जी का पत्र मिलने पर पेलम होते हुए बामनोली पधारे। यहाँ के संघ में बहुत फूट पड़ी हुई थी। कुछ भाई तो इसी फूट के कारण सनातन जैन धर्म से डिग रहे थे। चरित्रनायक जी ने सबको समझा कर परस्पर संपकी स्थापना की। सबका मनो-मालिन्य दूर किया।

यहाँ से बिनोली, हिलवाड़ी बड़ोतमंडी, पेलम, मितरावली पधारे, यहां श्री श्यामलाल जी के शिष्य प्रेमचंद्र की दीक्षा हुई, यहां से फिर लिपाढ होते हुये श्यामली पधारे, यहां श्री सुखानन्द जी के पास विमलसेन, और भजनलाल दीक्षित हुए-फिर यहां से लिसाढ, पड़ासोली, दोघट, बामनोली होते हुए बिनोली पधारे।

संवत् १९८१ का चतुर्मास यहीं बिनोली में हुवा इस चतुर्मास में प्लेग का बहुत जोर रहा। जैन श्री संघने अपनी तरफ़ से गरीब रोगियों की परिचर्या का अच्छा प्रबन्ध किया।

बिनोली का चतुर्मास समाप्त कर बड़ौत छपरोली रठोड़ा, सूँफ, गांगड़ोली, टीकरी, दोघट होते हुए दाहा पधारे। यहांपर लग भग ३०—३२ अग्रवाल वैश्य घरों ने चरित्रनायक जी से सनातन जैन धर्म की श्रद्धा ग्रहण की। एक जाट भी नवकार मंत्र सामायिक संवर सीखकर जैन क्रिया करने लगा। यहां से विहार करते हुए सामली पधारे। सामली वाले भाइयों के विशेष आग्रह से संवत् १९८२ का चतुर्मास सामली किया। इस चतुर्मास में श्री ऋषिराज जी स्वामी के शिष्य श्री स्यामलाल जी भी साथ थे। धर्म ध्यान अच्छा हुवा। श्रावक वर्ग में बड़ा उत्साह रहा। इस चतुर्मास में मलेरिया ज्वर के कारण बहुत कष्ट उठाना पड़ा। प्रायः सभी साधु बीमार रहे।

यहां से अगला संवत् १९८३ का चतुर्मास दोघट वाले भाइयों के विशेष आग्रह से दोघट हुवा। चरित्रनायक जी के शिष्य श्री पं० पृथ्वीचन्द्र जी महाराज के व्याख्यानों का जैन जनता के अतिरिक्त अजैन जनता पर भी अच्छा प्रभाव पड़ा। यहां कल्लु और हरभज नामक दो जाटों ने प्रतिबोधित होकर जैन धर्म की पवित्र श्रद्धा ग्रहण की।

—:०:—

# प्रकरण ३० वाँ

चतुर्मास ४४-४५-४६ संवत् १९८४-८५-८६

नारनौल महेन्द्रगढ़

## अजैनोंका जैन धर्म से प्रेम और दीक्षा

दोघट का चतुर्मास समाप्त कर छपरोली, कुताना, मुरथल, होते हुए सोनीपत पधारे। यहाँ से खेवड़ा जाते हुए बीच में सड़क पर देहली से आते हुए पंजाबी मुनि युवराज श्री काशीराम-जी मिले। आप बड़े ही शान्त स्वभावी मिलनसार एवं समाज हितैषी मुनि हैं। आप जैन समाज की उन्नति के लिए आदर्श प्रयत्न कर रहे हैं। आपसे करीब आध घंटा समाजोन्नति सम्बन्धी प्रेमालाप होता रहा। अस्तु—खेवड़ा से जाँटी, ऊँचा-खेड़ा सब्जी मंडी होते हुए देहली सदर पधारे। मुसद्दीलाल, फूलचन्द, मनोहरलाल आदि श्रावक वर्ग के विशेष आग्रह से नौ व्याख्यान दिए।

यहाँ से सोहनलाल जी आदि श्रावकों के आग्रह से देहली शहर पधारे। नौ घरे में लाला गोकुलचन्द जी जौहरी की धर्म-शाला में ठहरे। बारादरी में उपदेश दिया गया। उपदेशों से श्रीसंघ में अच्छी जागृति रही। अत्र विराजित मुनि श्री छोटेलाल जी व आत्मार्थी शान्त स्वभावी मुनि जड़ावचन्द्र जी का बड़ा प्रेम पूर्ण व्यवहार रहा।

यहाँ से चिराग दिल्ली, महरोली, गुड़गाँवा की छावणी, हरसुर की गढी, पाटोदी रेवाड़ी आदि क्षेत्रों में धर्मोपदेश द्वारा जनता में धार्मिक जागृति करते हुए नारनौल पधारे। यहाँ के नाजिम परमान्दजी ने दर्शन किए। आपके साथ घमासिंह जी नायब नाजिम आदि अन्य भी राज्य कर्मचारी थे। इन्हें जैन धर्म के मुख्य सिद्धान्तों का परिचय कराया। संवत १९८४ का चतुर्मास भी यहीं हुवा। पं० श्री पृथ्वीचन्द्र जी महाराज के व्याख्यानों का अजैन जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा। बहुत से अजैन बंधु जैन धर्म के श्रद्धालु बने। एक ब्राह्मणी ने जिसने अपने जीवन में कभी धार्मिक भावना से तपश्चर्या नहीं की थी, अठाई की तपश्चर्या की।

आर्य समाजी पं० रूपराम शर्मा से श्री पृथ्वीचन्द्र जी महाराज का तीन दिन तक सृष्टि कर्तृत्ववाद पर शास्त्रार्थ हुवा। इस समय लग-भग ३००-४०० मनुष्यों की उपस्थिति होजाती थी। अन्तमें सनातन जैन धर्म का पक्ष सिद्ध हुवा। जनता पर इसका पूर्ण प्रभाव पड़ा। पं० दिनेश झा व्याकरणाचार्य (दरभंगा निवासी) पं० श्रीधर वैद्य शास्त्री, पं० गिरिधर वैद्य आदि ब्राह्मण विद्वान भी भगवान महावीर के अनेकान्त सिद्धान्त के पूर्ण श्रद्धालु भक्त बने।

चतुर्मास समाप्त कर सिंघाणे पधारे। यहाँ से फिर नारनौल आए। इस समय यहाँ नारनौल में ही माह बदि पंचमी के दिन अमोलकचन्द्र की दीक्षा हुई। यह दीक्षित श्री पृथ्वीचन्द्र जी महाराज के शिष्य और चरित्रनायक जी के पौत्र शिष्य बने।

दूसरा संवत् १९८५ का चतुर्मास भी पौत्र शिष्य अमरचंद्र की संस्कृत पढाई के लिये यहाँ हुवा। कार्तिक में आकर श्री

पृथ्वीचन्द्र जी महाराज के पैरों में वातव्याधि होगई । अस्तु, चतुर्मास समाप्तिपर बिहार न हो सका । व्याधि की खबर सुनकर दादरी का चतुर्मास समाप्त कर श्री स्यामलाल जी मुनि-ठाणा तीन से नारनौल आए । बहुत कुछ चिकित्सा के बाद आषाढ में जाकर आराम हुवा ।

अस्तु- श्रावक ज्वालाप्रसाद† जी के विशेष आग्रह से संवत् १९८६ का चतुर्मास महेंद्रगढ़ हुवा । पं० श्री पृथ्वीचन्द्र जी महाराज के व्याख्यानों से अजैन जनता पर अच्छा असर हुवा । दीवान रामचन्द्र जी वेदान्ती चरित्रनायक जी के पूरे श्रद्धालु भक्त बने । ये अपने जीवन में कभी जैन साधुओं के पास नहीं आए थे । अब इनका भगवान महावीर के सिद्धान्तों पर विश्वास हो चला है । नाथूराम अग्रवाल वैश्य व मंगतराम सुनार ने चरित्रनायक जी से सम्यक्त ग्रहण की । मंगतराम सुनार ने सजोड़े ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया । क्षेत्रानुसार श्रावक वर्ग में धर्म ध्यान भी अच्छा हुवा । लाला ज्वालाप्रसाद जी की वृद्धा माता ने और नारनौल निवासी नानकचन्द्र सुराणा की माता ने अपूर्व उत्साह के साथ अठाई अर्थात आठ दिन का उपवास किया । साधुओं में भी मुनि श्री स्यामलाल जी ने व श्रीचन्द्र ने अठाई की तपश्चर्या की । यह चतुर्मास बड़े आनंद के साथ धर्म ध्यान से समाप्त हुवा ।

---

† आप इस समय हैदराबाद से अपनी जन्म भूमि महेन्द्रगढ (पटियाला) में आए हुए हैं ।

# प्रकरण ३१ वाँ

## चतुर्मास ४७ संवत् १९८७ हिसार

## हरियाणा प्रान्त में भ्रमण

चतुर्मास समाप्त कर बसई, दादरी, मानृडा होते हुए भिवानी पधारे। यहाँ से मार्ग में बड़ी कठिनाइयाँ झेलते हुए तोसाम पधारे। यहाँ बहुत से जैन भाइयों को उपदेश देकर जुवा सट्टा आदि व्यसनों का त्याग करवाया। यहाँ से जमालपुर होकर हाँसी पहुँचे। यहाँ बहनों को माता मसानी आदि मिथ्यात्व पूजन का त्याग कराया। महताबसिंह, प्रतापसिंह, आदि श्रावकों के विशेष आग्रह से चतुर्मास की स्वीकृति देकर खेड़ी माजरा रामरा आदि अजैन गाँवों में धर्मोपदेश देते हुए जीन्द पधारे। यहाँ कुछ दिन ठहर कर बड़ोदी में जैन जाटों को धार्मिक नियम व्रत करवा कर कसूण पधारे। यहां कुछ समय पहले स्वामी पदधारी तेरा पंथी मुनि दयारामजी सनातन जैन बंधुओं को चैलेंज देगए थे कि यदि कोई बाईस संप्रदायी साधु असंयति दान पर शास्त्रार्थ करना चाहे तो मैं जहां कहीं हूँ शास्त्रार्थ करने के लिए यहां आने को तैयार हूँ।

अस्तु–हेमराज रामनारायण दीपचन्द मनोहरलाल पटवारी आदि श्रावकों ने चरित्रनायक जी के शिष्य श्रीपृथ्वीचन्द्र जी

महाराज से शास्त्रार्थ करने की स्वीकृति लेकर † तेरा पंथ-वालों को शास्त्रार्थ के लिए खुला चैलेंज दे दिया। तेरा पंथी श्रावक दयाराम जी को शास्त्रार्थ के लिए कसूण लाए भी पर वह बड़ोदा वाले स्थानक वासी बाईस संप्रदायी जाट वीरों को शास्त्रार्थ के विषय में साफ नकारात्मक उत्तर देकर विहार कर गए। इस कार्य से तेरा पंथियों द्वारा जैन के नाम पर जो कलंकित बातें अजैन जनता में फैली हुई थी वे दूर होगई। सब लोगों को तेरापंथ और बाईस संप्रदाय की बिभिन्नता का पता चल गया।

अस्तु–यहाँ कसूण से लघु मुनि अमोलकचन्द्र का स्वास्थ्य बिगड़ जाने से चिकित्सा के लिए फिर जीन्द पधारे। यहाँ एक महिना ठहरे। लग भग बीस बहनों ने विदेशी वस्त्र का परित्याग किया। और भी सामायिक संवर आदि के बहुत से नियम हुए। यहाँ जीन्द की मंडी में पंजाबी मुनि श्री वृद्धिचन्द्र जी व प्रेमचन्द्र जी ठहरे हुए थे। आपका बड़ा प्रेम रहा। परस्पर एक दूसरे के स्थान पर आने जाने का वार्तालाप करने का एक संप्रदाय जैसा आदर्श व्यवहार रहा।

जीन्द से खेड़ी, खरक, आदि क्षेत्रों में होतेहुए हिसार पधारे। यहाँ के लाला नेमिचन्द रईस, धर्म—प्रेमी लाला बनवारीलाल

---

† यह श्वेताम्बर जैन समाज की एक विक्रमाब्द १८१५ में निकली हुई शाखा है। इस शाखा के संस्थापक भीषम जी थे। इस संप्रदाय की मान्यता है कि:-कोई किसी को मारता होतो बचाना नहीं-भूखे अपाहिज को भोजन देना नहीं आदि आदि।

बजाज, बाबू उग्रसेन, चंदूलाल अर्जिनवीस, मुंसी अमीरसिंह, बाबू तनसुखराय B. A., LL. B. वकील, बाबू महावीरप्रसाद B. A.,LL. B. वकील, बाबू दौलतराम B. A., LL. B. वकील, बाबू न्यामतसिंह कविवर आदि आदि स्थानक बासी व दिगंबर-जैन भाई अपने यहाँ चतुर्मास कराने के लिए विशेष आग्रह करने लगे। तब चरित्रनायक जी ने कहा कि:- मैं मजबूर हूँ। चतुर्मास हाँसी मन चुका है। यदि हांसी वाले स्वीकृति देदें तो तैयार हूँ।

अस्तु- नेमिचन्द बनवारी लाल जी हांसी जाकर स्वीकृति लिआए। संवत् १९८७ का चतुर्मास यहीं हिसार हुवा। क्षेत्रा-नुसार धर्म ध्यान अच्छा हुवा। बाबू न्यामतसिंह सुमेरुचन्द आदि दिगंबर जैन बंधुओं का भी व्याख्यान आदि में प्रसंशनीय योग रहा।

आश्विन में श्री पृथ्वीचन्द्र जी महाराज के पैरों में बात-व्याधि होगई। चिकित्सा की गई पर कुछ आराम न हुवा। आखिर वैद्य भगवंतरायजी मालेर कोटला को खबर दीगई। आप हिसार आए। आपकी औषधि से स्वास्थ्य लाभ हुवा।

इसी रुग्णता के समय में सत्या-ग्रही मुनि श्री मिश्रीलाल जी व पूज्य जवाहरलाल जी महाराज की संप्रदाय के मुनि मोडीलाल जी हिसार आए। चरित्रनायक जी के पास एक ही मकान में ठहरे। परस्पर बड़ा आदर्श प्रेम रहा। इस प्रेम पूर्ण बर्ताव का जनता पर पूरा प्रभाव पड़ा।

इसी समय में तेरा पंथी मुनि माधव जी भी हिसार आए इन्हों ने सनातन जैन धर्म की निन्दा बुराइयां की अतः चरित्र-नायक जी के शिष्य पं० श्री पृथ्वीचन्द्र जी महाराज ने तेरापंथ वालों को शास्त्रार्थ के लिए खुला चैलेंज दिया। तेरा पंथ की तरफ से इस का कोई उत्तर नहीं दिया गया। धर्म प्रिय जनता पर इसका पूर्ण प्रभाव पड़ा।

## सुधा-धारा

१ भयंकर आंधी के समय कमलपत्र स्थित जल बिन्दु की जो हालत होती है। वही स्थिति मनुष्य के जीवन की है।

२ जो मनुष्य श्रद्धा वादी और आशावादी हैं वेही बुद्धिमान हैं।

३ हे भव्य पुरुष अपनी आत्मा को विषयों से रोके रख, तू सब प्रकार के दुःखों से छूटजायगा।

४ यदि तुम निर्भय होना चाहते होतो किसी को कभी भय भीत मत करो।

५ पारमार्थ दर्शी मुनि को किसी प्रकार की जोखम नहीं।

"भगवान महावीर"

# प्रकरण ३२ वाँ

चतुर्मास ४८ संवत् १९८८—महेन्द्रगढ

## पूज्य जवाहरलाल जी से संमिलन

विहार योग्य स्वास्थ्य ठीक होजाने पर हिसार से सातरोज पधारे। यहाँ वैष्णव भाइयों ने आग्रह करके दो दिन ठहराए। यहाँ से हाँसी मिलकपुर भुवानी खेड़ा होकर अजैन गाँव लुहारी पधारे। एक राजपूत के मकान पर ठहरे। इसी दिन मध्याह्न के बाद महेंद्रगढ निवासी श्रावक लाला ज्वालाप्रसाद जी चरित्र-नायक जी के दर्शनार्थ जिनेन्द्र गुरु कुल पंचकूला ( पंजाब ) के वार्षिकोत्सव से वापिस लौटते हुए हिसार की खबर से हिसार हाँसी आदि होकर यहां लुहारी आए। आप तो इसी दिन दर्शन कर भिवानी चले गये और चरित्रनायक जी अगले दिन भिवानी पहुँचे। यहाँ भिवानी में आपने चरित्रनायक जी से अपने यहां के चतुर्मास की स्वीकृति ली।

यहां भिवानी में पं० श्री पृथ्वीचन्द्र जी महाराज प्रातः काल व्याख्यान दिया करते थे। व्याख्यान में जैन अजैन सभी लोग अच्छी संख्या में उपदेश श्रवण का लाभ लेते रहे। यहाँ के प्रसिद्ध वैष्णव संप्रदायी, अग्रवाल महा सभा के सभापति

मेलाराम वैश्य भी जब तक ठहरे बराबर आते रहे। आपने अनेकान्तवाद, स्थावरजीव वाद, के उपर विशेष—वार्तालापकर एतत्सम्बन्धी जानकारी प्राप्त की।

भिवानी से दादरी पधारे। इसीसमय यहाँ स्थली प्रान्त में अहिंसा धर्म का जयघोष कराने वाले जैनाचार्य पूज्य जवारलालजीभीपधारे। परस्पर बड़ा आदर्श मेल जौल रहा। साधु संमेलन सम्बन्धी व जैन समाजोन्नति सम्बन्धी बहुत से विषयों पर वार्ता लाप हुवा। इसी समय श्री संघकी एकता के लिए चरित्रनायक जी ने अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस के निथि पत्रानुसार पर्वतिथियाँ आराधन करने की स्वीकृति दी।

यहाँ से कलाना बसई होकर महेंद्रगढ पधारे। भिवानी की स्वीकृति के अनुसार संवत १९८८ का चतुर्मास यहां महेंद्रगढ में हुवा। व्रत वेला तेला चोला पचोला अठाई आदि धर्म ध्यान क्षेत्रानुसार अच्छा हुवा। अजैन बंधुओं ने अच्छी प्रेम भक्ति की।

धर्म प्रेमी लाला ज्वालाप्रसाद जी ने चरित्रनायक जी के पौत्र शिष्य अमरचद (लेखक) की बनाई हुई अमर-जैन पुष्पांजलि और अहिंसा सिद्धांत नामक पुस्तक छपवाकर बिना मूल्य वितरण की। और चतुर्मास समाप्ति पर मंगसिर बदि पंचमी को अपने पिता श्री के स्मारक में 'सुखदेव सहाय जैन सार्वजनिक लायब्रेरी' स्थापित की। यह लायब्रेरी अब अच्छे रूप से चल-रही है। जनता बड़े उत्साह से लाभ उठारही है।

—:०:—

## प्रकरण ३३ वां

# आचार्य-पद

प्रिय पाठक वृन्द! यह निश्चित बात है कि अपने आपको ऊँचा और नीचा करना मनुष्य के अपने ही आधीन है। किसी दूसरे के आधीन नहीं। यदि मनुष्य स्वयं ऊँचे बनने के काम करेगा तो ऊँचा बन जायगा और यदि नीचे बनने के काम करेगा तो नीचा बन जायगा। ऊँचे बनने के काम करने से ऊँचा किस तरह बना जाता है? इसके लिए उदाहरण में चरित्रनायक जी को ही लें:-

आप एक समय गृहस्थ अवस्था में थे। जब आपका जीवन एक बहुत ही साधारण श्रेणी का जीवन था। उस समय किसे पता था कि आप आगे जाकर इस प्रकार अपनी आत्मिक उन्नति कर सकेंगे। लोगोंकी धारणा में तो आप सांसारिक भोग विलाश के पथ पर चलने वाले पथिक थे। परन्तु—लोगों की धारणा के विरुद्ध समय ने पलटा खाया। आपका लक्ष्य—बिन्दु बदलगया। आपका ध्यान ऊँचे बनने की तरफ़ दौड़ा। आपने गुरु श्री से उच्चभावों के साथ दिव्य मुनिव्रत धारण करलिया। अब आप नीचे पद से ऊँचे पद पर आपहुँचे। मुनिपद कितना ऊँचापद है! इसके लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं। मुनिपद की प्रधानता अग ज़ाहिर है।

यही नहीं, मुनिपद के कर्तव्य को यथोचित रीति से पालन करते हुए आपने अपनी और भी उन्नति की कि:- पूज्य मनोहरदास जी महाराज की संप्रदाय के श्री संघनें आपकी आचार्यपदोचित योग्यतापर एक मत होकर आपको महेन्द्रगढ (पटियाला) में अभी संवत १९८८ फालगुण वदि पंचमी शुक्रवार के दिन आचार्य पद से समलंकृत किया।

आपको यह पूज्यपद देनेका विचार श्री संघ बहुत दिनों से कर रहा था। परन्तु—संप्रदाय सम्बन्धी कुछ ऐसे ही कारणों से आप इस महाभार को अपने उपर लेनेसे इन्कार ही करते रहे। अत: यह विचार कार्यरूप में न आ सका। अब साधु संमेलन संबन्धी चर्चा चलने से श्री संघ ने एकत्रित होकर अन्त में अपने विचार में सफलता प्राप्त करही ली। ऐसी शुभ सफलता सभी भव्य पुरुषों को प्राप्त हो।

अस्तु—अब श्री संघकीएक यही शुभ भावना है कि-जिस प्रकार आप अबतक अपनी और अपने समाजकी उन्नति करते आए हैं; उसी प्रकार अब भविष्य में भी दृढता के साथ उन्नति करते रहें और सभ्यसंसार के समक्ष उन्नतिका यह ऊँचा आदर्श स्थापित करते रहें।

इहं सि उत्तमो भन्ते, पच्छा होहिसि उत्तमो।
लोगुत्त मुत्तमं ठाणं, सिद्धिं गच्छसि नीरओ॥

भावार्थ—हे पूज्य! यहाँपर भी आप उत्तम गुणोंसे उत्तम हैं और परलोक में भी आप उत्तम गुणोंसे उत्तम ही रहें गे। और उत्तम से उत्तम स्थान जो मोक्ष है उसको भी आप कर्म-मल रहित होकर सानन्द प्राप्त करें गे।

## प्रकरण ३४ वाँ

# जीवन चरित्र से शिक्षाएँ

विज्ञ पाठक! समयाभाव से संक्षिप्तरूप में ही लिखा हुवा यह जीवन चरित्र आपके सामने है। आप इस जीवन चरित्र-को आदिसे अन्त तक वास्तविक पढने की शैली से पढ़ें और फिर तदनुसार आचरण भी करें। क्योंकि सत्पुरुषों के जीवन-चरित्रों के पढनेका वास्तविक उद्देश्य कुछ व्यर्थ के मनोरंजन में अमूल्य समय को नष्ट करना नहीं है। वलिक सत्पुरुष जिस मार्ग पर चलकर सत्पुरुष बने हैं उस मार्ग पर यथाशक्ति चलकर सत्पुरुष वनना है।

अस्तु—अब पूज्य श्री के जीवनचरित्र से क्या शिक्षाएँ मिलती हैं? यह संक्षिप्त में सार रूप यहांसे अपने हृदय पट पर अंकित करलें।

**त्याग शक्ति**—चरित्रनायक जी के त्यागपर दृष्टि डालिए कितना ऊँचा त्याग है। मुनि दीक्षा लेकर आपने केवल साँसारिक भोग विलाशों का वाह्य त्याग ही नहीं किया। वल्कि मान प्रतिष्ठा आदि आन्तरिक दुर्गुणोंका भी त्याग किया। यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखें तो वास्तविक त्याग यही है। यदि वाह्य त्याग के साथ आन्तरिक त्याग नहीं है तो वाह्य त्याग करने से त्याग नहीं करना ही अच्छा है।

चरित्रनायक जी ने अपनी त्याग शक्ति को सदा पूर्णता की ओर ही बढ़ाई। आपको विचलित करने के लिए बहुत प्रयत्न भी किए गए परन्तु—आप अपने त्याग पर अटल ही रहे। आपने त्यागी बनकर संसार को भी त्यागी बनने का सदुपदेश दिया। आपके इस त्यागमय उपदेश का जनता पर पूर्ण प्रभाव पड़ा। अनेक भव्यजीवों ने सदाचार की शिक्षा ग्रहण की। वास्तव में ऐसे पुरुषों के ही वचन जनताके हृदय पर असर करसकते हैं। क्योंकि त्याग का उपदेश देने से पहले खुद का त्यागी होना जरूरी है।

शान्ति—चरित्रनायक जी में शान्तिका गुण बहुत ही प्रशंसनीय एवं आदरणीय है। आपके मंद हास्य विकसित मुखसे ही देखने वाले को आपकी आदर्श शान्ति का भान हो जाता है। अक्षयगढ़ में अज्ञानी लोगों द्वारा आपपर पत्थर व ईंटें फेंकी गई। परन्तु, वहां आपने वह शान्ति दिखाई कि फेंकने वाले ही अन्त में आपके भक्त बनगए। वास्तव में शान्ति ऐसी ही होनी चाहिये ? ऐसी शान्ति ही मनुष्यत्व का विकाश कर मनुष्य को ऊँचा उठाती है।

धैर्य—चरित्रनायक जी का धैर्य भी अटल है। आप पर अनेकानेक भीषण से भीषण आपत्तियाँ पड़ी। परन्तु-आपने अपने धैर्य को कभी नहीं छोड़ा। कईबार भयावह निर्जन पहाड़ी प्रदेशमें रात्रिको ठहरने का काम पड़ने पर आप निर्भयता के साथ वहीं ठहरे। परन्तु—आपने अपनी साधु मर्यादा भंग

करके रात्रिको कहीं गमनागमन नहीं किया। विपत्ति पड़नेपर अटल रहना—मर्यादा भंग नहीं करना ही सच्चा धैर्य है। और यही सच्चा धैर्य सत्पुरुषों का आदर्श गुण है।

निष्पक्षपातता—आपका हृदय धार्मिक मत मतांतरों की पक्षा पक्षी में निन्दा बुराई में अभिरुचि नहीं रखता। आप का विचार है कि सबका लक्ष्यबिन्दु तो एक है ही। कोई पहले पहुँच जायगा तो कोई पीछे पहुँच जायगा। आखिर पहुँचना है सबको एकही जगह। मार्ग की तू—तू मैं—मैं करके क्यों सिर फोड़ा फोड़ी की जाय। यदि कोई लक्ष्यबिन्दु से उलटा ही चलरहा हो तो शान्ति से प्रेम पूर्वक उसे समझावो। वह मानजायगा। तू और मैं की दीवारें खड़ी कर देने से तो वह मानता होगा तो भी नहीं मानेगा। क्योंकि, तू और मैं में तो कदाग्रही पना है सत्याग्रही पना नहीं।

कईवार इस मत पक्ष के झगड़े का काम पड़ा है। और आपने संप्रदाय की गौरवकी रक्षा करते हुए आक्षेपों का जवाब भी दिया है। किन्तु—जब तब इस व्यर्थ के वितंडावादों को टालते हुए यही कहा है कि—यह अच्छा नहीं है। इसमें किसी पक्ष का भी लाभ नहीं।

यही कारण है कि—जैन संप्रदायी—क्या दिगंबरबन्धु, क्या श्वेताम्बर बन्धु, अन्य संप्रदायी—क्या वैष्णवबन्धु, क्या आर्य बन्धु, क्या सिक्ख बन्धु आदि सभी सज्जन आपके श्रद्धालु भक्त हैं हांसी के दादुपंथी महंत बाबा रामदासजी हांसी से विहार

किया तब आपके साथ बुवानीखेड़ा तक आए थे और दो दिन तक बिहार में साथ रहकर उपदेश आदि से लाभ उठाया था। अभी हाल में ही नारनोल के नाज़िम साहब सिक्ख सरदार रणबीरसिंह जी लाला ज्वालाप्रशाद जी के साथ यहां महेंद्रगढ में आपके दो दफे दर्शन कर चुके हैं और धार्मिक विषयों पर-वार्तालाप कर अतीव प्रसन्न हुए हैं।

यों एक दो क्या जिस किसी भी संप्रदाय का हो आपके दर्शन कर आपका श्रद्धालु भक्त बन जाता है। वस्तुतः जब तक मनुष्य में यह परमतसहिष्णुता का गुण विकसित नहीं होगा तब तक मनुष्य में मनुष्यत्व धर्म नहीं रहेगा बल्कि पशुत्व धर्म रहेगा।

**लेख सौन्दर्य**—आपका लेख शुद्धता, स्पष्टता आदि सभी गुणों से अतीव सुन्दर है। आपने आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, ज्ञाता धर्मकथांग आदि २६ सूत्र और रामायण आदि १०० के लग भग छोटे मोटे ग्रन्थ लिखे हैं।

आपके अक्षर क्याहैं? बस मुक्ताफल सदृश जड़े हुए मालूम देते हैं। आपके अक्षर सौन्दर्य पर दर्शक के मुख से सहसा अहा (वाह) की ध्वनि निकल पड़ती है। अक्षर-सौन्दर्य लेखक का मुख्य गुण है। अक्षर-सौन्दर्य को नगण्य समझने वाले सज्जन ध्यान दें।

**शास्त्राभ्यास**-आपने स्वधर्म और पर धर्म के शास्त्रों का अभ्यास भी बड़ी योग्य रीति से किया है। आपने श्वेताम्बर

संप्रदाय के आचारांग आदि ३२ आगम, कर्म ग्रन्थ प्रवचनसारो-द्धार, आदि व दिगंबर संप्रदाय के गोमट्टसार, समयसार, मोक्षमार्ग सर्वार्थ सिद्धि आदि, व वैष्णव संप्रदाय के गीता, भागवत, योग-वाशिष्ठ, आत्मपुराण, मनुस्मृति आदि धार्मिक शास्त्रों का विचार-पूर्ण अवलोकन कर सर्व साधारण में धार्मिक जागृति की। सभी संप्रदायों के धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करले ने के बाद धर्म प्रचार जितने अधिक अच्छे रूप में हो सकता है, उतना केवल एक अपनी संप्रदाय के ग्रन्थों के अध्ययन से नहीं हो सकता।

चारित्र-शुद्धि-चारित्र शुद्धि उच्च जीवन का सर्वोपरि गुण है। इस विशाल गुण के बिना उच्चजीवन किसी भी प्रकार-से नहीं हो सकता। चरित्रनायक जी का जीवन चारित्र-शुद्धि के कारण ही उच्चबना है। आप गुरुदेव से जिस प्रतिज्ञा से चारित्र लिया था उसी प्रतिज्ञा से चारित्र पालन करते आरहे हैं।

वस्तुतः प्रतिज्ञानुसार चारित्र का पालन करनाही धन्यता का काम है। चाहे कितने ही क्योंन संकट पर संकट आएँ परंतु, ली हुई धार्मिक प्रतिज्ञा का कभी भंग नहीं करना चाहिए।

जो दुर्बल हृदय संकट आनेपर धर्म को धोखा देतेहुए अपने स्वार्थ का रास्ता नीकाल लेते हैं वे जरा समझें, धर्म कभी धोखा नहीं खासकता, धोखा वेही खाते हैं जो धर्म को धोखा देते हैं। सत्पुरुष वेही हैं जो कभी धर्म को धोखा देने का प्रयत्न नहीं करते। देखिये संवत् १८१६ में जमनापार काँधला शहर में इब्राहीम लोधी के क्रूर सैनिकों द्वारा, चरित्रनायक जी के पूर्व वंशज मुनि खेमचन्द्र जी आदि तीन मुनि कत्ल करदिए गए।

पर साहसी मुनियों ने "तुम हिन्दु तो नहीं हो" इसके जवाब में प्राणरक्षा के लिए स्पष्ट तो क्या और कोई नकारात्मक गुप्त संकेत भी नहीं किया। धन्य धार्मिक अटल प्रतिज्ञा! प्रतिज्ञा ऐसी ही होनी चाहिए।

अस्तु, वास्तव में सत्पुरुष-आदर्श पुरुष वेही हैं, जो निर्भय निरुद्वेग होकर भगवद्वचनों पर संसार में प्रथम ज्ञान-पूर्वक श्रद्धा करते हैं और फिर श्रद्धा के अनुसार ही क्रिया काण्ड-चारित्र का आचरण करते हैं। कोरी श्रद्धा से ही कुछ काम नहीं बनजाता। श्रद्धा के साथ चारित्र का आचरण करना भी जरूरी है।

इस विषय पर यहाँ जैनागम का एक प्रवचन अंकित किया जाता है, जिसको पाठक ध्यान से पढ़ें और सत्पुरुषों के मार्ग पर चलें:—

जिण वयणे अणुरत्ता जिण वयणं जे करेन्ति भावेणं।
अमला असंकिलिट्ठा तेहोंति परित्त संसारी॥

भावार्थ-जिन सत्पुरुषों की भगवान के प्रवचनों पर श्रद्धा है और जो भगवान के प्रवचनानुसार ही अपने कर्तव्य का पालन करते हैं। वेही मिथ्यात्वमल रहित — राग द्वेषादिक क्लेश रहित अल्पसंसारी-मोक्षगामी जीव हैं।

## इति उत्तर खण्डम्

# आदर्श-जीवन

## परिशिष्ट खण्डम्

"यद्यदा चरति श्रेष्ठ, स्तत्त देवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते, लोकस्तदनुवर्तते"

भावार्थः- श्रेष्ठ ( अर्थात् आत्म ज्ञानी कर्मयोगी ) पुरुष जो कुछ करता है, वही अन्य अर्थात् साधारण मनुष्य भी किया करते हैं। वह जिसे प्रमाण मानकर अंगीकार करता है लोग उसी का अनुकरण करते हैं।

"देख भलोंकी चाल को बर्ते सब संसार"

## प्रथम—प्रकरण

# पूज्य गुणानुवाद

### स्तुति—पञ्चकम्

( १ )

श्रीमत् सन्मति शासनं प्रकथयन् जैनायनं दर्शयन्।
पापौघं परिनाशयन् धवलयन् कीर्त्या च दिङ् मण्डलम् ॥
शिष्यालीं परिपाठयन् प्रतिदिनं भव्यव्रजं रञ्जयन्।
सोऽयं शश्वदिलातले विजयतां श्री मोतिरामो मुनिः ॥

( २ )

कोपाग्निं शमयन् सुशान्तिपयसा दर्पं विलुम्पन् परं।
मायां संसृतिवर्द्धिनीं मृजुतया चो न्मूलयन्मूलतः ॥
लोभं सर्व विनाशकं विदलयन् संतोष वृत्या सदा।
सोऽयं शश्वदिलातले विजयतां श्री मोतिरामो मुनिः ॥

( ३ )

तृष्णाब्धिं परिशोषयन् सुगहनं मन्दापयन्मन्मथं।
मोहं साधु नृणां नितान्त निबिडं संनाशयन् दुःखदम् ॥
राग द्वेष निशाचरं विधुरयन् भिक्षु व्रतं पालयन्।
सोऽयं शश्वदिलातले विजयतां श्री मोतिरामो मुनिः ॥

( ४ )

व्याख्यानं सुमनोहरं परिषदि श्रद्धास्पदं श्रावयन् ।
वैदुष्यंबलयन् स्पृहां शिथिलयन् जैनांश्चसम्वर्द्धयन् ॥
ग्रन्थान्संरचयन् द्रुतंमलिनयन् वक्त्राणि दुर्वादिनां ।
सोऽयं शश्वदिलातले विजयतां श्री मोतिरामो मुनिः ॥

( ५ )

जाडनं प्रक्षपयन् भ्रमंविकलयन् वानंच संकोचयन् ।
नैजं संकृशयन वपुश्च तपसा संमोदयन् धीधनान् ॥
कर्मारीन् विनिपातयन् निजकुलं प्रख्यापयन् प्रज्ञया ।
सोऽयं शश्वदिलातले विजयतां श्री मोतिरामो मुनिः ॥

## उपसंहार

( ६ )

वर्षे वाण गजाङ्क भूपरिमिते श्री वैक्रमीये शुभे ।
मासे चाश्वयुजे वलक्षकदले वाचस्पते वासरे ॥
पंचम्यां सुतिथाविदं विरचितं भक्त्या च सत्साधुना ।
सुरपद्यं स्तुति पंचकं सुललितं देवेन्दु नाम्नामया ॥

मुनि अमरचन्द्रः

—:०:—

# स्तुति—सप्तकम्

(१)

श्रीमत्पूज्यवरऽ प्रकाण्ड धिषणो विद्वत्सुलब्धादरो।
वादि ज्ञान विचार चारु निपुणऽख्यातिञ्च लोके गतः॥
शास्त्रार्थेषु समागताश्च विदुष स्सन्तोषयन् प्रज्ञया।
जैनाचार्य वरः सदैव जयतु श्री मोतिरामो मुनिः॥

(२)

नाना देश निवासि सभ्यपुरुषैऽ पूज्यां ध्रिपद्मद्वयः।
सर्वाऽधर्म विनाशक स्सुकृतकृन्नूनं स्वधर्म प्रियः॥
हिंसाहीन विचारयुक्त मनुजै राराधितोऽहर्निशं।
जैनाचार्यो वरः सदैव जयतु श्री मोतिरामो मुनिः॥

(३)

पुण्या भाव समूह संचितमही भारापनोद क्षमः।
संतापार्णव मग्न सज्जन कुल ध्वान्तस्य विध्वंसकः॥
सोऽयं शोभित साधुमण्डलकुलऽ कृष्णावतारः स्वयम्।
जैनाचार्य वरः सदैव जयतु श्री मोतिरामो मुनिः॥

(४)

अस्माकं जडतां प्रभो! विदलयन् नश्चेतनान् चेतयन्।
व्याख्यानं प्रतिपक्षि युक्तिदलनं संश्रावयन् सर्वदा॥
इत्येवं हितमातनोसि कथितः पूज्यः सतां जैनिभिः।
जैनाचार्य वरः सदैव जयतु श्री मोतिरामो मुनिः॥

( ५ )

धर्मस्वान्त! विभो! त्वमेव ददसे सत्योपदेशा मृतं ।
प्रासास्तृप्तिमहो सदैव भजनं कुर्मस्त्वदीयं प्रभो! ॥
इत्थं सज्जनमण्डलि स्तुतगुणो गीर्वाण गिर्तिगतो ।
जैनाचार्य वरः सदैव जयतु श्री मोतिरामो मुनिः ॥

( ६ )

नक्षत्रेश मरालहार सदृशींकीर्तिं क्षिपन् सर्वतः ।
मिथ्या संग्लपयन् विवेकनिकरं संधारयन् स्वात्मना ॥
द्रुह्यन मोहनिशाचराय मद्‌यन् भव्यव्रजं सर्वदा ।
जैनाचार्य वरः सदैव जयतु श्री मोतिरामो मुनिः ॥

( ७ )

स्वायत्ती कृत देवदानवनरं दर्पं दलन् दूरतो ।
योनिःशेष विनाशकं प्रळयकृन्निर्जित्य मानंनिजम् ॥
तत्वज्ञान विचार बुद्धिनयनै भूतित्वमासादयन् ।
जैनाचार्य वरः सदैव जयतु श्री मोतिरामो मुनिः

विद्याभास्कर पं० धर्मानन्द शास्त्री

प्रिंसिपल

राधाकृष्ण संस्कृत नागरी विद्यालय

महेन्द्रगढ़

# आदर्श—प्रतिज्ञा

(१) सदा हम पूज्य श्री जी के समुद गुण गान गाएँगे
विमल आदर्श पर चलकर विमल खुद को बनाएँगे
(२) हमें शिक्षित बनाने को जो शिक्षा पूज्य जी देंगे
चलेंगे बस उसीपर और औरों को चलाएँगे
(३) रहेंगे प्रेमसे मिलजुल सदा हम पूज्य शासन में
मिटा के फूट की हस्ती जहाँ में नाम पायेंगे
(४) हमारे पूज्य जी जैनागमों के श्रेष्ठ ज्ञाता हैं
अतः पढ बीर वाणी हम सभी को फिर पढाएँगे
(५) बनाकर पूज्य चरणों को कमल हम भृंग बनते हैं
"अमर" सद्गुण पुजारी बन चरण में सर झुकाएँगे

# पूज्य गुण महिमा

धन्य गुरु धन्य धर्म धारी—आपकी महिमा है भारी—ध्रुव
(१) वैरागी बनकर अटल, तनकी ममता टार
गुरु मंगलसेन महाराज से लीना संयम भार
भोग सब छोडे संसारी—ध०

( २ ) पंचमहाव्रत पालते, गुण सताईस धार
सूरज ज्यों अज्ञान का, दूर करो अंधकार
चन्द्र ज्यों शीतल सुखकारी—ध०

( ३ ) क्षुधा तृषा दुर्बचनादी के, सहते कष्ट अपार
देश देश में घूमकर, करते धर्म प्रचार
स्वार्थ बिन सच्चे उपकारी—ध०

( ४ ) क्रोध आदि के दोष से, रहते हो अविकार
क्षमा आदि गुण बृन्द से शोभित शान्ताकार
पाप रिपुदल के संहारी—ध०

( ५ ) सुन्दर नाम है आपका, श्री मोतिराम सुखकार
बचन सुधासम आपका, सुन खुश हों नर नार
"टेकचन्द" बन्दत हरवारी—ध०

टेकचन्द्र जैन
रठोड़ा ( मेरठ )

—:०:—

## द्वितीय—प्रकरण

# जैन धर्म की प्राचीनता

प्रिय पाठको! जैन धर्म एक विशाल धर्म है। इस की विशालता का कोई आदि अन्त नहीं। यह अपनी विशालता के कारण ही विश्व—धर्म कहलाता है। ऐसा कुछ हमीं नहीं कहते हैं वलिक अजैन संसार के बड़े बड़े सभ्य पुरुष भी यही कहते हैं कि "वास्तविक दृष्टि से यदि कोई धर्म, सार्व भौम धर्म कहलाने के योग्य है तो वह जैन धर्म ही है"।

"जैन धर्म क्या है यह तो सार्व भौम जीवन शास्त्र है। जैन धर्म ने समस्त वस्तुओं का वर्णन बड़ी उत्तम रीतिसे किया है। जैन धर्म ने ही उत्तम से उत्तम समाजवाद बतलाया है। मैं इस समय एक जैन धर्म की ही विजय देख रहा हूँ।"

काका कालेल कर

"इस समय संपूर्ण भारतवर्ष जैन बनचुका है। जैन धर्म का प्रचार हाल में हिन्दु मुसलमान ईसाई अदि सब संप्रदायों में होरहा है। जैन धर्म में सत्य और अहिंसा से ऊँचा आदर्श नहीं है। सब धर्मों से उत्तम जैन धर्म के सिद्धान्त हैं इसको किसी से ना नहीं हो सकती।"

पं० गोविन्द वल्लभ पंत

यह तो रही पौर्वात्य संसार की बात। अब कुछ पाश्चात्य संसार के विचारों का भी संक्षिप्तसा अवतरण दिया जाता है:—

यह मैं प्रथमही कह चुका हूँ कि जैन धर्म को सामान्यतः सब धर्मों और विशेषतः आर्य धर्मों का उच्च सोपान समझना चाहिए।

जे कोस्लाविया राज्य के पल ची डा० परटोल्ड के १८-८-१९२१ के धूलिया के व्याख्यान का कुछ अंश

दुनियाँ के धर्मों में जैन धर्म का स्थान बहुत ऊँचा है। ऐसी मेरी मान्यता है। अन्य दर्शनों की बाह्य सामान्य बावतों पर जैन धर्म की जितनी छाप पड़ी है उससे कहीं अधिक इस की छाप उनके मौलिक सिद्धान्तोंपर पड़ी है।

डा० हेल्मुथ, ग्लैसनैंपवर्लिन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर के पूनाके व्याख्यान से

अस्तु-सज्जनों! यह जैन धर्म जितना विशाल है उतना ही यह प्राचीन भी है। जैन धर्म अपनी विशालता और प्राचीनता में अपना कोई साथी नहीं रखता। जब जब जैन धर्म की उत्पत्ति के विषय में निष्पक्षपात ऐतिहासिक विद्वानों द्वारा जाँच की गई है तब तब जैन धर्म दुनियाँ के अन्य धर्मों से बहुत आगे पहुँचा है। आगे क्या, एक दृष्टि से यों कहिये कि अतीत के गर्भ में कहीं भी जैन धर्म की उत्पत्ति की विचारणा का आभास नहीं मिलता। जैन धर्म की प्राचीनता के विषय में अब सभ्य तथा विद्वान संसार को तो कोई संदेह नहीं रहा है। परन्तु— अभी बहुत से ऐसे भ्रान्त सज्जन हैं जो जैन धर्म की प्राचीनता

के विषय में बहुत कुछ मनमानी भ्रान्तियाँ फैलाते हैं। अतः उनकी भ्रान्ति को मिटाने के लिए यहाँ संक्षिप्त रूप से कुछ प्राचीनता विषयिक बातें अंकित कीजाती हैं:—

भगवान श्री ऋषभदेवजी जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर हुए हैं, आपके पिता का नाम नाभिराजा माता का नाम मरुदेवी और आपके एकसौपुत्र में से बड़े पुत्र का नाम भरत था, आपके विषय में पुराणों तथा वेदों में इस प्रकार लिखा है:—

शिवपुराण में-

कैलाश पर्वते रम्ये वृषभोऽयं जिनेश्वरः।
चकार स्वावतारंच सर्वज्ञः सर्वगः शिवः। ॥ ५९ ॥

अर्थात्--केवल ज्ञान द्वारा सर्व-व्यापी कल्याण स्वरूप सर्वज्ञाता यह ऋषभनाथ जिनेश्वर मनोहर कैलाश पर्वत पर उतरते हुए ॥ ५९ ॥

ऋषभनाथ जी ने कैलाश पर्वत से मुक्ति पाई है। जिन और अर्हत् ये शब्द जैन तीर्थंकरके लिए ही रूढ हैं।

नाग पुराण में –

अष्टषष्ठिषु तीर्थेषु यात्रायां यत्फलं भवेत्
आदिनाथस्य देवस्य स्मरणेनापि तद्भवेत्

अर्थ–जो फल ६८ तीर्थों की यात्रा करने में होता है, वह फल आदिनाथ भगवान के स्मरण करने से होता है।

ऋषभनाथ जी का ही दूसरा नाम आदिनाथ है, क्यों कि ये प्रथम तीर्थंकर थे।

**श्रीमद्‌भागवत में**

नाभेः सुतः सवृषभो मरुदेवि सुनु
योंवै चचार समदृग् मुनि योग चर्याम्
तस्यार्हे सत्य मृषयः पदमा मनन्ति
स्वच्छः प्रशान्त करणः समदृक् सुधीश्च

**स्कंध २ अ० ७ श्लो० १०**

**भावार्थ—महाराजा नाभि और महाराणी मरुदेवी के सुपुत्र ऋषभदेव जी भगवान ने मुनिवृत्ति धारण कर जनता को सदुपदेश दिया। ऐसे स्वच्छ शान्त हृदय सम्यग् दृष्टि और सर्वज्ञ ऋषभदेव भगवान के पदको ऋषि लोग आचरण करते हैं।**

दशभि र्भोजितैर्विप्रैर्यत्फलं जायते कृते
मुनेरर्हत्सुभक्तस्य तत्फलं जायते कलौ

***भागवत स्कंध २ अ० ७***

**भावार्थ—कृतयुग में दश ब्राह्मणों को भोजन कराने से जो फल होता है, वह अर्हत भक्त एक मुनि को याने जैन साधु को भोजन कराने से होता है।**

**ऋग्वेद में—**

आदित्या त्वगसि आदित्य सद आसीद अस्त भ्राद्यां वृषभो तरिक्षं जमिमीते वरिमाणं। पृथिव्या आसीत् विस्वा भुवनानी सम्राडि वस्वेतानि वरुणस्य व्रतानि । ३० । अ०३ ।

**अर्थ—तू अखण्ड पृथ्वी मंडल का सारत्वचास्वरूप है, पृथ्वी तलका भूषण है, दिव्य ज्ञान द्वारा आकाश को नापता है, ऐसे हे वृषभनाथ सम्राट इस संसार में जगरक्षक व्रतों का प्रचार करो।**

महाभारत में भी जैन साधुओं का जिक्र आया है। युद्ध के समय एक निग्रन्थ जैन साधु का शकुन हुवा था और अर्जुन के पूछने पर श्री कृष्ण ने कहा था कि ये शकुन जीत देने वाला है। महाभारत में जैन धर्म की सप्तभंगीकाभी कथन है। अतः यह सिद्ध है कि महाभारत काल में वेदव्यास जी के समक्ष जैन धर्म का पूर्ण अस्तित्व था।

अब रामायण के समय को लीजिए। रामायण का समय जैन धर्म के बीसवे तीर्थंकर मुनि सुव्रतनाथ जी का समय था। इस बात का समर्थन कि रामायण से पूर्व भी जैन धर्म का अस्तित्व था, केवल जैन शास्त्र ही नहीं करते किन्तु, अन्य शास्त्र भी करते हैं। जिनको हिन्दु धर्मावलंबी बिना किसी ननु नचके प्रमाण मानते हैं।

नाहं रामो नमे वांछा भावेषु च नमेमनः
शान्ति मास्थातुमिच्छामि स्वात्म न्येव जिनो यथा

मुनिवशिष्ठ रचित योग वाशिष्ट अ० १५ श्लोक ८

भावार्थ—न मैं रामहूँ और न मेरी पदार्थों में इच्छा है। मैं भगवान जिन-जैन तीर्थंकर की तरह अपनी आत्मा में शांति लाभ करना चाहताहूँ।

इस श्लोक से स्पष्ट है, कि रामचंद्र जी के समय में जैन धर्म का प्रचार इस भूमंडल पर था। यदि उस समय जैन धर्म का अस्तित्व ही नहीं थातो उसके मान्य तीर्थंकर "जिन" का श्री रामचंद्र जीने आदर्श रूप से स्मरण न किया होता।

इसके अतिरिक्त वाल्मिकी जी की बनाई हुई रामायण में भी जैन धर्म का कथन आया है। बालकांड सर्ग १४, श्लोक२२ में लिखा है कि राजा दशरथ जी ने श्रमण—जैन साधुओं को भोजन दिया। किष्किन्धा काण्ड में रामचन्द्र जी ने बाली से भी साफ कहते हैं कि—मेरे पूर्वज मांधाता राजाने एक पापी जैन साधु को मार दिया था तो मैंने तुझे पापी समझकर मारा इसमें क्या दोष?

अस्तु—अब अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है, पूर्वोक्त पुराण और वेद ग्रन्थों से स्पष्ट सिद्ध होगया है कि, जैन धर्म वैदिक युग से भी बहुत प्राचीन है। जैन धर्म के प्रारंभ-काल का कोई पता नहीं। जिन ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेद में भगवान ऋषभ नाथ जी का गुण कीर्तन किया है, उनके समय का पता लग जायतो जैन धर्म की उत्पत्तिका कुछ पता चलजाय। भगवान ऋषभनाथ जी के समय का पता लगाना इतिहास की शक्ति से बहुत बाहिर है। अतः जैन धर्म का उदय काल भी बतलाना कठिन नहीं किन्तु असंभव है।

अब आधुनिक प्रथाके अनुसार प्रसिद्ध प्रसिद्ध प्राचीन इतिहास वेत्ताओं के मत जैन धर्म के उदय काल बतलाने के विषय में प्रगट किए जाते हैं। गौरसे देखें कि, ये कट्टर वेदानुयायी लोग भी क्या कहते हैं।

श्रीमहा महोपाध्याय डाक्टर सतीशचन्द्र जी विद्या भूषण M. A. P. H. D. F. I. R. S. सिद्धान्त महोदधि प्रिंसिपल संस्कृतकालेज कलकत्ता, अपने भाषण में कहते हैं।

जैनमत तबसे प्रचलित हुवा है, जब से संसार में सृष्टि का प्रारंभ हुवा है। मुझे इसमें किसी प्रकार का उज्र नहीं है कि, जैनदर्शन वेदान्तादि दर्शनों से पूर्वका है। लोक मान्य बालगङ्गाधर तिलक अपने केसरीपत्र, ता० १३ दिसंबर सन् १९०४ में लिखते हैं।

ग्रन्थों तथा सामाजिक व्याख्यानों से जाना जाता है कि, जैन धर्म अनादि है। यह विषय निर्विवाद तथा मत भेद रहित है। सुतराम् इस विषय में इतिहास के दृढ सुबूत हैं .... ....

साहित्यरत्न लाला कन्नोमलजी सेशनजज धौलपुर लाला लाजपतराय जी लिखित भारत इतिहास में जैन धर्म सम्बन्धी आक्षेपों के प्रतिवाद में लिखते हैं—

"सभी लोग जानते हैं कि जैन धर्म के आदि तीर्थंकर श्री ऋषभदेव स्वामी हैं, जिनका काल इतिहास परिधि से कहीं परे है। इनका वर्णन सनातन धर्मी हिन्दुओं के श्रीमद्भागवत पुराण में भी है। ऐतिहासिक गवेषणा से मालूम होता है कि, जैन धर्म की उत्पत्ति का कोई निश्चित काल नहीं है। प्राचीन से प्राचीन ग्रन्थों में जैन धर्म का हवाला मिलता है।

श्री स्वामी विरूपाक्ष वडियर धर्म भूषण, पंडित, वेदतीर्थ विद्यानिधि M. A. प्रोफेसर संस्कृत कालेज इन्दौर "चित्रमय जगत" में लिखते हैं—

अर्हन् देव साक्षात् परमेश्वर स्वरूप हैं। इसके प्रमाण भी आर्य ग्रन्थों में पाए जाते हैं। अर्हंत परमेश्वर का वर्णन वेदों में भी

पाया जाता है ...... ऋषभदेव जी का नाति मरीचि प्रकृतिवादी था और वेद उसके तत्वानुसार होने के कारण ही ऋग्वेद आदि ग्रन्थों की ख्याति उसी के ज्ञान द्वारा हुई है फलतः- मरीचिऋषी के स्तोत्र, वेद, पुराण आदि ग्रन्थों में हैं और स्थान स्थान में जैन-तीर्थंकरों का उल्लेख पाया जाता है तो कोई कारण नहीं कि हम वैदिक कालमें जैन धर्म का अस्तित्व न माने, वेदों में जैन धर्म को सिद्ध करने वाले बहुत से मंत्र हैं। सारांश यह है कि इन सब प्रमाणों से जैन धर्म का उल्लेख हिन्दुओं के पूज्य वेद में भी मिलता है।

इनके अतिरिक्त

The short study in Science of comparative religion ( by Major General J. C. R. Furlong. F. R. S. E. etc. 1987 ) नामकी पुस्तक में यह सिद्ध कियागया है कि ईसा के अनगिनत वर्ष पहले से जैनमत भारत में फैला हुवा था। आर्य लोग मौजूद थे उस पुस्तक के कुछ वाक्य ये हैं —

Through what historical channels did Budhism influence early christianity, we must widen this enquiry by making it embrace Jainism the undoubtedly prior faith of very many of millions through untold millenniums. Intro. (P. 2).

भावार्थ- किन ऐतिहासिक मार्गों से बौद्ध धर्म ने पुराने ईसाई धर्म पर असर डाला, इसकी खोज करते हुए यह कहना होगा कि इसने जैनमत स्वीकार किया जो वास्तव में

अकथनीय हजारों वर्षों से करोड़ों मनुष्यों का प्राचीन धर्म था। आगे चलकर इसी पुस्तक में लिखा है।

It is imposible to find a begining for Jainism (Intro P. B.) Jainism thus appears an earliest faith of India. (Intro. P. 15.)

भावार्थ- जैन धर्म के प्रारंभका पता पाना असंभव है। इस तरह भारत का सबसे पुराना धर्म यह जैन धर्म मालूम होता है।

उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट है कि, वर्तमान ऐतिहासिक अविरोध इस बात का समर्थन करते हैं, कि जैन एक सर्वथा स्वतंत्र धर्म है किसी धर्म की शाखा या रूपान्तर नहीं और वह अति प्राचीन याने ऐतिहासिक सीमा से पूर्व का है। अब जैन धर्म को कलका पैदा हुवा बताने वाले अल्पवयस्क वृद्धमहोदय ध्यान दें। वे किस प्रमाण पर जैन धर्म को अर्वाचीन बतलाते हैं। यह युग ऐतिहासिक युग है। अब कपोल कल्पित गोले गिरड़ाने का जमाना चलागया है। सत्यं जयति नानृतम्।

—:o:—

# तृतीय–प्रकरण

## मुक्ति–वाद

**मुक्तिस्वरूप**—इस जन्म जरा मरण रोग शोक परिपूर्ण संसार में परिभ्रमण करने वाले सभी संसारी जीव अनादि काल से पराधीनता के कारण दुखी होरहे हैं। यद्यपि सभी जीव सुखी होने की अभिलाषा करते हैं और तदनुसार कुछ पुरुषार्थ भी करते हैं परंतु, वह सब पुरुषार्थ या परिश्रम वास्तव में स्वाधीन निर्विघ्न अनंत सुख प्राप्ति का साधक न होकर दुःख मिश्रित पराधीन सांत सुख का कारण होता है। जो सुख दैवाधीन–पराधीन होने से दुःख रूप ही है। इससे वह इंद्रियजन्य सुख अविनाशी स्वाधीन सुख नहीं हो सकता। सच्चा अनंत सुख स्वाधीनता में ही होसकता है। इन्द्रियजन्य पराधीनता में नहीं।

इस लिए प्रत्येक सुखाभिलाषी मनुष्य का कर्तव्य है, कि वह यह ज्ञान प्राप्त करे कि, सच्चा अबाधित सुख कहाँ पर किस दशा में किस प्रकार हो सकता है। ऐसा बारंबार शोध परिशोध पूर्वक विचार करने पर अन्त तोगत्वा यही मालूम होगा कि, वस्तुतः बाधा रहित सच्चा अविनाशी सुख तेरे अन्दर ही है— कहीं बाहर की वस्तु में नहीं। तू भूलकर पर पदार्थों के संयोग वियोग में सुख दुःख की झूठी कल्पना किया करता है और उस स्वाधीन सुख से तू कर्माधीन होने के कारण वंचित होरहा है।

वह सच्चा सुख तुझे कर्म बंधनों के छुटने पर मुक्ति अवस्था में पूर्ण स्वाधीन होने पर ही मिल सकता है।

मुक्तिका अर्थ—मोचनं मुक्ति–अर्थात् छूटना सो मुक्ति है। किससे ? बंधन व पराधीनता से—यह अर्थ अपने आप निकल आता है। यह स्वाभाविक नियम है कि—बंधन पूर्वक ही मुक्ति का व्यवहार होता है। कहीं पर किसी भी शास्त्र में बिना बंधे में मुक्ति का व्यवहार नहीं होता। जैसे आकाशमें मुक्ति का व्यवहार नहीं हो सकता। कोई पुरुष बेड़ी संयुक्त होकर जब उस बेड़ी से छूटता है तभी मुक्ति—मोक्ष का व्यवहार होता है। इसी प्रकार यह आत्मा भी संसार में किसी न किसी के परतंत्र जरूर है और था। आत्मा को परतंत्र करने वाले उसके साथ अनादि काल-से लगे हुए कर्म हैं। जिन्हें अन्य दर्शन कोई प्रकृति, कोई अज्ञान, कोई माया आदि शब्दों से कहते हैं। यद्यपि यह आत्मा ज्ञान दर्शन आदि चैतन्य गुणवाला चेतन पदार्थ है, तोभी राग द्वेष क्रोध मान माया लोभ अज्ञान आदि के कारण शुद्ध होने की उसकी शक्ति अचेतन कर्मों द्वारा भी रोकी जाती है।

जिस तरह मद्यपी ( शराबी ) की हिताहित के विचार करने की शक्ति जड़ पदार्थ मद्यद्वारा रुकी हुई देखी जाती है। उसी प्रकार आत्मा की ज्ञान दर्शनादि रूप शक्ति कर्म द्वारा आच्छा-दित होरही है। यह कर्म सम्बन्ध भी अनादिकाल से चला आता है। कभी ऐसा नहीं था कि, जिस प्रकार सूर्य पहिले निर्मेघ होकर स्वच्छ निर्मल होता हुवा पश्चात् मेघाच्छादित होने से अस्पष्ट प्रकाश वाला होजाता है। परंतु, कनकोपल की तरह

अर्थात् जबसे सोना पाषाण है तभी से उस में किट्टिम कालिमादि मल भी मौजूद है। पर फिरभी जिस प्रकार स्वर्णकार स्वर्ण को प्रयत्न द्वारा शुद्ध कर सकता है। उसी प्रकार भव्यात्मा भी तपश्चरण ध्यानादि द्वारा कर्म नाशकर निष्कर्म निष्कलंक सर्वज्ञ परमात्मा-हो सकता है। कर्म बन्ध से मुक्त होनेपर मुक्ति ऐसा व्यवहार होता है।

**मुक्ति-सुख**-बहुत से सज्जनों की धारणा है कि- मुक्ति में जाकर क्याकरें? वहाँपर किसी प्रकार का खाने, पीने, पहरने आदि का सुखतो है ही नहीं। मोक्षप्राप्त कर परमात्मा क्या बनता है, योंतो पत्थर की तरह जड़-क्रियाशुन्य बनजाना है। न कहीं आना न जाना न कोई बात न चीत, ऐसी मुक्ति से तो बिना मुक्ति केही अच्छे। यहाँ अपने प्रेमी परिवार से कुछदेर अपने दुःख सुख की बात तो करलेते हैं।

उपरोक्त बातें कहने वाले सज्जन बड़ी भूल करते हैं। भला कहीं सरसों और मेरुका मिलान हुवा है? कहाँ मुक्ति का वह वास्तविक सुख और कहाँ यह संसारिक झूँठा सुख? खान, पान, परिधान आदि में सच्चा सुख नहीं है। यह सुख तो मोह ग्रस्त प्राणियों के चित्तकी भ्रान्ति है। जिसे वास्तविक सुख कहते हैं, वहतो सदा काल एक रूप रहता है। यह नहीं कि, कभी वह सुख सुख है तो कभी वह सुख दुःख है। सांसारिक सुख एकरूप नहीं रहता। एक चीज़ किसी को सुख रूप मालूम देती है तो वही चीज़ दूसरे को भयंकर दुःख रूप मालूम देती है। एक खाने की चीज मिठाई को ही लें यदि मिठाई खाने से सुख

ही सुख होता है, तो एकतो उसके निरंतर खाते रहने से मन नहीं उचटना चाहिए। दूसरे मधुमेह बुखार आदि व्याधिकी हालत में भी सुख ही रहना चाहिए पर ऐसा कभी नहीं होता। किसी भी हकीम से पूछो, वह यही कहेगा कि, अधिक मीठा मत खावो। यह तुम्हें एक दिन बड़े भारी दुःख में पटक देगा।

अस्तु, यह तो रही जिन्हें संसारिक सुख कहते हैं उन दुःखरूप खान पान आदि सुखोंकी बात। अब-मुक्तिसुखक्या है-कैसा है? इस शंकाका उत्तर यह है कि-मुक्ति-सुख कोई मुट्ठी की चीज नहीं जो झट-पट मुट्ठी खोलकर दिखा दिया जाय। मुक्ति-सुख, आत्मिक सुख है अतः वह अनुभव गम्य है। बिना स्वयं अनुभव किए मुक्ति सुख का पता नहीं लग सकता कि, वह कैसा है? जबकि, संसारी जीवने अनादि काल से केवल सांसारिक सुखों का ही अनुभव किया है, कभी अणुमात्र भी आत्मिक सुख का अनुभव नहीं किया तो अब बातों से कैसे पूर्ण आत्मिक सुख का ज्ञान कर सकता है। जब यह आत्मिक सुख के साधनों द्वारा मुक्ति प्राप्त करलेगा तभी मुक्ति-सुख का वास्तविक अनुभव कर सकेगा। शास्त्रों में मुक्ति सुख का कुछ थोड़ा बहुत अनुभव कराने के लिए प्रयत्न किए गए हैं। पर वे अपूर्ण ही हैं—पूर्ण नहीं। मुक्ति सुख तक पहुँचने की शक्ति बिचारे शब्दों में कहाँ रक्खी है। शब्द की शक्ति तो सीमित है और मोक्ष का सुख असीमित है। असीमित का वास्तविक ज्ञान सीमित नहीं करा सकता। यदि किसी महानुभाव का शब्द शक्ति पर घमंड है। अर्थात् वह यह समझता है कि, शब्द द्वारा संपूर्ण ज्ञान कराया जासकता है तो! मैं पूछता हूँ कि, मानलो मैंने कभी अपने जीवन में मीठा नहीं खाया, केवल

मीठा का नाम ही नाम सुना है। सो मुझे अब यह बताइये कि, मीठा कैसा होता है? बस शब्द शक्ति पर गर्व करने वाले सज्जनों के पास मुझे मीठा का ज्ञान कराने के लिए सिवा मीठा खिलाने के और कोई शब्द आदि का साधन नहीं है। अस्तु— जब कि मामूली चीज मीठाकाही ज्ञान नहीं कराया जा सकता तो! मुक्ति सुख का ज्ञान कैसे कराया जा सकता है। मुक्ति सुखका ज्ञान करने वाले सज्जन मुक्ति के साधनों पर विश्वास पूर्वक अमल करें, मुक्ति सुख का अपने आप पता चल जायगा। यदि शब्दों द्वारा ही कुछ पूछना है तो संक्षिप्त में मुक्ति सुख यही है कि, मुक्ति में न जन्म है नजरा है न मरण है न रोग है न शोक है। और क्या सब दुःखों से सदा के लिए छूटकर अपने आप में मस्त रहना है।

**पुनरागमन**-बहुत से सज्जनों का विचार है कि, मुक्ति से फिर वापिस लौटना पड़ता है। मुक्ति कुछ काल के लिए होती है, सदा के लिए नहीं। यदि मुक्ति सदा काल के लिए ही हो तो फिर मुक्तिमें और आ जन्म कारागार में क्या फर्क है? यदि मुक्ति में जीव जाते ही जाते रहें, वापिस नहीं आवें तो एक दिन मुक्ति में तो इतना भीड़ भड़क्का हो जायगा कि, इस धक्कापेली में कहीं ठहरने को जगह नहीं मिलेगी और यह संसार जीवों से खाली होकर सुनसान बन जायगा। यद्यपि जीव अनंत कहे जाते हैं फिर भी हमेशां संसार में से निकलते रहने से एकदिन तो सारे के सारे जीव चले ही जायेंगे। अतः किसी भी प्रकार से मुक्ति में सदा काल रहना सिद्ध नहीं होता।

अस्तु, उपर्युक्त विचार में कितनी सत्यता है? इसका यहाँ संक्षिप्तत: निर्णय किया जाता है। मुक्ति से पुनरागमन मानने वाले महाशयों की मुख्यतः दो शंकाएं हैं।

पहली शंका भीड़-भड़क्का की है, जो बच्चों की बातों से कुछ ज्यादह वज़न नहीं रखती। क्योंकि, भीड़ भड़क्का वहीं हो सकता है जहाँ कि, अस्मदादि के समान भौतिक शरीर हो। मुक्त जीवों के जब शरीर ही नहीं है तो, उन्हें एक स्थान पर ठहरने में भीड़ भड़क्का की बाधा भी कैसे हो सकती है। क्या सारे संसार में ठसाठस जड़ परमाणुओं के भरे रहने पर भी परमेश्वर, आकाश आदि अमूर्तिक अशरीर पदार्थ उसी जगह में नहीं ठहरे हुए हैं? उसी तरह हजारों, लाखों, करोड़ों भी मुक्त जीव एक जगह में रहें इसमें क्याबाधा है? देखिये, एक गायक लाखों मनुष्यों के समक्ष गायन करता है। लाखों मनुष्यों की दृष्टि उसके मुखपर पड़ती है तो क्या, उसके मुख पर अन्य दृष्टि के लिए स्थान नहीं रहता? नहीं यह बात नहीं-चाहे लाख मनुष्य और भी आएँ, फिर भी उसके मुख पर दृष्टियों के लिए स्थान वैसा ही रहेगा-कुछ स्थाना-भावकी बाधा नहीं होगी। एक स्थान पर दीपक का प्रकाश है और वह प्रकाश अच्छी तरह से है। फिर उसी स्थान पर हजारों दीपक और रखदो दीपक जगह रोकेंगे परंतु, प्रकाश जगह नहीं रोकेगा। प्रकाश, प्रकाश में स्थान पाता चला जायगा। जबकि, प्रकाश जैसे स्थूल मूर्ति धारी पदार्थ ही जगह नहीं रोकते हैं तो, भला अशरीरी अमूर्तिक मुक्तिजीव किस प्रकार जगह रोक सकते हैं।

अब रही दूसरी शंका संसार खाली होने की। वह स्ववचन व्याघात के दोष से दूषित होने से ऐसी ही है कि गूंगेके ओजस्विनी भाषा मग्न व्याख्यान से सभा का मुग्ध होना! अपने ही मुंह से पहले यह कहते हैं कि जीव अनन्त हैं और फिर साथ ही यह कहते हैं कि यों सदा जाते रहने से एक दिन समाप्ति हो जायगी यह कैसी विचित्रता पूर्ण बात है। जिसका कुछ ठौर ठिकाना ही नहीं। अनंत उस संख्या को कहते हैं कि जिसमें अनंत का गुण करने से भी गुण न फल अनंत ही हो अनंत का भाग देने पर भी भजन फल अनंत आवे और अनंत जोड़ देने पर भी अनंत और अनंत घटा देने पर भी शेषफल अनंत रहे जैसे आकाश में चाहे जिस दिशा को चलना शुरू किया जाय हजारों करोड़ों वर्ष बराबर चलते रहने पर भी आकाश का अन्त नहीं आसकता है क्यों कि वह अनन्त है। ईश्वर के गुणों का वर्णन करने के लिए मनुष्य हजारों लाखों वर्ष तक भी बराबर कार्य करते रहें किन्तु ईश्वर के गुण खतम नहीं क्यों कि वे अनंत हैं। अरबों वर्षों तक निरंतर विचार करने पर भी जैसे जीवों की मौजूदगी का या पिता पुत्र की परंपरा का अथवा बीज वृक्ष की परम्परा का शुरू आत (प्रारंभ) नहीं मालूम हो सकता है। दशमलव की रीति से १ अंक में से १/१०, १/१०० आदि संख्याओं को हजारों वर्ष तक बराबर घटाते रहने पर भी जैसा १ का अंक नहीं समाप्त हो सकता है। आवर्तक दशमलव का भाग कभी पूराही नहीं होता है। बस इसी प्रकार सदा मुक्ति में जाते रहने, परभी संसार खाली नहीं होसकता क्यों कि वे जीव अनंत हैं। अनंत शब्द का मानेही यहहै कि जिसका किसी प्रकार अन्त (आखीर) न हो सके।

भला, मुक्ति में से पुनरागमन हो भी कैसे ? जबकि आगमन का कोई कारण ही नहीं रहा। बिना कारण के कार्य का होना किसी भी सभ्य विद्वान व्यक्ति को मान्य नहीं होसकता। आत्मा एक रूप होने से वास्तव में निश्चल है-ध्रुव है। उस में किसी भी प्रकारका अध्रुवता का दोष नहीं है। जो अध्रुवता आत्मा में देखी जाती है वह कर्मों के संयोग से है। जब तक यह आत्मा कर्म बन्धनों के विचित्र बंधन से बँधी हुई है तभी तक यह आवागमन के चक्र में भ्रमण कररही है। जब यह कर्म बन्धन छूट गया तो आवागमन का चक्र नष्ट-भ्रष्ट। क्या कभी किसी देश में छिलके से छूटा हुवा चांवल भी फिर उग सकता है ? नहीं कभी नहीं—प्रसिद्ध तार्किक हरिभद्र सूरि पुनरागमन के विषय में क्या ही अकाट्य युक्ति युक्त बात कहते हैं—

दग्धे बीजे यथा त्यन्तं प्रादुर्भवति नांकुरः
कर्मबीजे तथा दग्धे नरोहति भवांकुरः

अर्थात्-जिस प्रकार दग्ध बीज कभी अंकुरित नहीं हो सकता उसी प्रकार तपश्चरण रूप अग्नि के द्वारा कर्म बीज के दग्ध होजाने पर जन्म रूप अंकुर नहीं उगसकता। यदि कभी दग्ध बीज भी पैदा होतो मुक्ति से भी वापिस आकर जन्म ग्रहण करना हो।

अस्तु अधिक क्या, यह स्वयं सिद्ध है कि कर्म रहित होने से मुक्तात्मा मुक्ति से लौट नहीं सकता। मुक्ति को आजन्म कारागार की उपमा देने वाले सज्जन मुक्ति शब्द का दरअसल खून करते हैं और मुक्ति को कारागार सिद्ध करते हैं। आजन्म

का नहीं तो कुछ कालका ही सही आखिर है तो कारागार ही। कुछ काल के लिए भी कारागार में कौन जाना पसंद करता है? लोग पागल हैं जो मुक्ति प्राप्त करने के लिए कठिन से कठिन तपश्चरण आदि शुभ कर्म करते हैं, क्यों नहीं किसी को मारपीट कर यहीं कुछ काल के लिए जेल यात्रा करलें। भाई! जेलयात्रा ही तो करनी पड़ी, फिर यहाँ की और वहाँ की का क्या भेद? परन्तु, पुनरागमन मानने वाले सज्जनों की बात चीतों से पता चलता है कि, उस मुक्ति की जेल में आनन्द है और यहाँ की जेल में दुःख है। बस ठीक है, अब कुछ कहना बाकी नहीं रह जाता। मुक्ति कारागार में कुछ काल सुख भोग कर फिर इसी संसार में दुख भोगने के लिए क्यों आवें? हमें तो सुख चाहिए, सुखका आजन्म कारागार ही पसंद है। अपनी अपनी पसंद ही तो ठहरी। चाहे फिर वह किसी की टीकहो-किसी की बेटीक हो।

सर्वज्ञता-बहुत से सज्जनों की यह धारणा है कि मुक्ति प्राप्त करलेने पर भी यह आत्मा सर्वज्ञ नहीं होती। सर्वज्ञ केवल एक परमात्मा ही है अस्तु, दूसरा कोई सर्वज्ञ नहीं हो सकता। जीवात्मा में ज्ञान गुण परिमित है, अतः परिमित अपरिमित कैसे हो? जीवात्मा का सर्वज्ञ होना किसी भी प्रमाण से सिद्ध नहीं होता। प्रत्यक्ष प्रमाण तो स्पष्टतः इसका इन्कार करता ही है, रहा अनुमान वह भी प्रत्यक्ष पूर्वक ही होने से इस विषय में कुछ नहीं कर सकता। सादृश्य ज्ञान का अभाव होने से उपमान यहाँ स्वयंगति शून्य है। अब रहा बिचारा शब्द प्रमाण

यह मतमतान्तरों के कारण भिन्न भिन्न होने से एक दूसरे वादी के समक्ष स्वयं असिद्ध है। यदि मुक्तात्मा सर्वज्ञ सर्वदर्शी बन जायतो फिर उसमें और परमात्मा में कोई अन्तर ही नहीं रहे। दोनों एक समान बनजायँ—दोनों के एक अधिकार होजायँ। आपस के मनोमालिन्य के कारण एक अधिकार पर दो अधिकारियों की जो हालत होती है वह सभ्य संसार से कोई छानी नहीं है। अतः अधिक क्या, सारी की सारी बातों को देखते हुए मुक्तात्मा का सर्वज्ञ न होना ही ठीक है।

उपर्युक्त विचार वाले सज्जन कहाँ तक सत्य के द्वारपर पहुँचे हैं पाठक इसका निर्णय करें। असर्वज्ञ वादी महाशयों को जीवात्मा के ज्ञान गुण से तो कोई इन्कार है ही नहीं। जो इन्कार है वह सर्वज्ञ होने से ही है। अब पूछना है कि—जिस समय जीव तपश्चरण आदि शुभ साधनों द्वारा कर्ममल से रहित होकर शुद्ध--सिद्ध होजाता है तो वह फिर अल्पज्ञ का अल्पज्ञ ही किस कारण से बना रहता है। क्यों नहीं वह सर्वज्ञ बनता ? क्या जीवके सर्वज्ञ होने में परमात्मा अपने अधिकार की रक्षा के लिए रुकावट डालता है ? इन सब प्रश्नों का उत्तर एक यही मिलता है कि-" जीवका ज्ञान परिमित है अतः जीव कितने ही तपश्चरण आदि साधनों का सदुपयोग करे पर वह सर्वज्ञ नहीं बनसकता। हाँ वह साधनों द्वारा अपने ज्ञान में उन्नति करते करते बहुज्ञ तो अवश्य बनजाता है"। अब फिर प्रश्न है कि, जब जीव ज्ञान सम्बन्धी उन्नति करते-करते बहुज्ञ बनजाता है तो वह कितना बहुज्ञ बनता है? बहुज्ञ से सर्वज्ञ बनने में फिरक्या रुकावट आजाती है? इन प्रश्नोंका असर्वज्ञ

वादी महाशयों के पास कोई उत्तर नहीं है। संपूर्ण जीवों में ज्ञानकी न्यूनाधिकता पाई जाती है। पशुओं के ज्ञान से मनुष्यों का ज्ञान बढा हुवा है, मनुष्यों में भी उत्तरोत्तर ज्ञानकी वृद्धि प्रत्यक्ष सिद्ध है। एक बालक एक दिन अ आ इ ई वर्णमाला पाठशाला में पढता है, वही पढते पढते एक दिन आचार्य बन-जाता है। अतः सिद्ध है कि, ज्ञान को रोकने वाला कोई आवरण अवश्य है। जिस जीवके जितना जितना वह आवरण उचित साधनों द्वारा हटता चला जाता है, उस जीवके उतना उतना ही ज्ञान अधिकाधिक प्रगट होता चला जाता है। इस प्रकार ज्ञान के आवरण की कमी होते होते—सर्वथा राग द्वेष आदि दोषों से मुक्त होते होते जब आत्मा के मुक्तिस्थ होजाने पर पूर्णता से आवरण हटजाता है तो आत्मा सर्वज्ञ सर्वदर्शी बनजाता है। जब आत्मा सर्वज्ञ सर्वदर्शी बनजाता है तो फिर वही स्वयं परमात्मा परब्रह्म बनजाता है। क्योंकि आत्मा और परमात्मा में परस्पर सिर्फ ज्ञान आदि की पूर्णता और अपूर्णता कोही तो फर्क है, और तो कुछ नहीं। जब धर्म के अचूक साधन से आत्मा का ज्ञान पूर्ण होगया तो आत्मा स्वयं ही परमात्मा बनगया। फिर उसे परमात्मा बनने से रोकने वाला संसार में है कौन? यह कोई राग द्वेष आदि दोषों से दूषित संसारी जीवों का अधिकार नहीं है। जिसको प्राप्त कर अधिकारी एक दूसरे को न सह सकने के कारण आपस में कटा मरी करें। यह तो आत्मिक अधिकार है, जिसको प्रत्येक आत्मा प्राप्त कर सकती है। भला कोई मनुष्य परोपकार आदि सद्गुणों द्वारा अपना मनुष्यत्व का अधिकार प्राप्त करना चाहे तो दूसरे मनुष्यत्व का अधिकार पाए हुए मनुष्यों का क्या हर्ज? यदि कोई हर्ज समझता है तो

वह वस्तुतः मनुष्य ही नहीं है। वह तो मनुष्य रूपेण राक्षस है। सच्चा मनुष्यत्व उसी मनुष्य में है जो मनुष्य संसार को मनुष्यत्व प्राप्त करते हुए अतीव आनन्दित होता है। यह हर किसी मनुष्यता प्राप्त हुए सभ्य मनुष्य से पूछ सकते हैं। वास्तव में परमात्मा वही है जो समस्त जीव संसार को अपने समान परमात्मा बनने में ही आनंद मानता है। वास्तविक आत्मत्व का प्राप्त करलेनाही आत्मा से परमात्मा बन जाता है। संसार के बड़े बड़े महापुरुष यही कहते आए हैं कि, ऐ कल्याण की इच्छा रखने वालो! तुम आत्मा से महात्मा और महात्मा से परमात्मा बनो। परमात्मा बनने में ही तुम्हारा कल्याण है। जब तक तुम अल्पज्ञ, अल्पदर्शक, अल्प शक्तिमान आदि- आदि अल्प ही अल्प बने रहोगे तो दुःखों से नहीं छूट सकोगे। दुःखों से छुटना-पूर्ण सुख प्राप्त करना पूर्णता में ही हो सकता है— अपूर्णता में नहीं „।

जयाधुणइ कम्मरयं अबोहिकलुसं कडं

तया सव्वत्तगं नाणं दंसणं चाभिगच्छइ

"भगवान महावीर"

जब यह आत्मा भ्रमवश लगी हुई कर्मरज को दूर कर देता है तब यह ही सर्वज्ञाता सर्व द्रष्टा बन जाता है।

सहि सर्वबित् सर्व कर्ता—

सांख्य दर्शन अ० ३ सू० ५६

वह पुरुष पद वाच्य आत्मा शुद्ध साधनों द्वारा सर्वज्ञ और सब करने वाला बन जाता है।

सत्वपुरुषा न्यता ख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्टातृत्वं सर्व ज्ञातृत्वं

योग दर्शन –अ० ३ सू० ४८

तात्पर्य-सत्व पुरुष की अन्यता ख्याति के समस्त पदार्थों का अधिष्ठातापन और सर्वज्ञता हो जाती है। अर्थात् पूर्ण भेद विज्ञान होने से सर्वज्ञता पूर्ण रूपेण प्रगट हो जाती है फिर कुछ जानना बाकी नहीं रह जाता।

अस्तु—पूर्व महापुरुषों के कथनों से स्पष्ट सिद्ध होगया है कि, मुक्तात्मा सर्वज्ञ होजाता है। बिना सर्वज्ञ बने कोई भी मुक्त नहीं हो सकता।

अब जो महाशय प्रमाणों के बल पर सर्वज्ञाभाव सिद्ध करते हैं उनसे पूछा जाता है कि, प्रथम प्रत्यक्ष प्रमाण से करते हो तो कौन से प्रत्यक्ष से करते हो। इन्द्रिय प्रत्यक्ष से या अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष से? यदि इन्द्रिय प्रत्यक्ष से करते हो तो इन्द्रिय ज्ञान अति-समीपवर्ती स्थूल पदार्थों में ही होता है मुक्ति जैसे इन्द्रिया गोचर-का नहीं। अतः इन्द्रिय प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है? यदि हठात् होसकता है तो लो आप सर्वज्ञ का अभाव सिद्ध करने वाले ही स्वयं सर्वज्ञ बनजाते हो। यदि अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष से करते हो तो वह असिद्ध ही है। इसलिये प्रत्यक्ष प्रमाण से सर्वज्ञाभाव की सिद्धि नहीं होती। यों प्रत्यक्ष से नहीं तो आपके ही कथनानुसार अनुमान से भी नहीं। रहे उपमान और शब्द ये दोनों अपने आप साफ़ साफ़ ही आपके पक्षका खण्डन कर रहे हैं। अस्तु-प्रमाणों से सर्वज्ञाभाव कभी सिद्ध नहीं होता।

**मुक्ति—साधन**—अब तक पूर्वके पृष्ठों में मुक्ति-स्वरूप आदि विषयों का संक्षिप्त रीति से विवेचन किया अब मुक्तिसाधन का विवेचन किया जाता है। मुक्ति प्राप्त करने के क्या साधन हैं? इस प्रश्न के उत्तर में भगवान महावीर स्वामी ने स्थानांग सूत्र में कहा है कि, ज्ञान और क्रिया मुक्ति के साधन हैं। बिना इन दोनों साधनों के मुक्ति प्राप्त करने की आशा करना वंध्या पुत्र की बरात में जाकर मोदक खाने की आशा करना है। विना साधन के साध्य नहीं होसकता। बहुतसे लोग केवल एक साधन परही डटे रहते हैं। अर्थात् कोई अकेले ज्ञान से ही मुक्तिमानते हैं तो कोई अकेली क्रिया से ही मुक्तिमानते हैं। परन्तु-जैन शासन का कथन है कि दोनों साधनों के अभिन्न-मेल से मुक्ति होती है — दोनों के विरोध से नहीं। न तो कोई अकेले ज्ञान से मुक्ति प्राप्त कर सकता है और न कोई अकेली क्रिया से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। बिना क्रिया के ज्ञान मुर्दा है और बिना ज्ञान के क्रिया मुर्दा है। क्या कोई देहली का मार्ग जान कर बिना चलेही देहली पहुँचा है—क्या कोई देहली का मार्ग बिना जाने योंही ऊट पटाँग पागल के समान केवल चलने से ही देहली पहुँचा है? नहीं कभी नहीं। देहली पहुँचने के लिए देहली के मार्ग का जानना और फिर उसपर चलना जरूरी है। ज्ञान पंगु है क्रिया अन्धी है। अतः कार्य सिद्धि के लिए दोनों का मिल जाना कहाँतक ठीक है और कहाँतक बे ठीक है पाठक विचारलें? भगवान महावीर का मेल-सम्बन्धी यह दृष्टान्त अटल है। यह कभी नहीं टल सकता। टालने वाले टाल करके दिखाएँ?

अस्तु—यह तो सिद्ध है कि मुक्ति के लिए दोनों का होना जरूरी है परन्तु, पहिले कौन और पीछे कौन? यह प्रश्न खड़ा होता है। पहिले ज्ञान होना चाहिए या पहिले क्रिया होनी चाहिए? यह चाहिए के प्रश्नका निपटारा अन्य दर्शनों से नहीं होसका अतः वे अन्त में एक-एक पर जम कर बैठगये। पर जैन दर्शन ने इस प्रश्न का निपटारा बड़ी अलौकिकता के साथ करदिया है। जैन दर्शन का कहना है कि:, पढमं नाणं तओदया प्रथम ज्ञान और पश्चात् क्रिया का नंबर आता है। ऐसा कहने का कारण सहज में ही समझ में आसकता है कि—जिस मनुष्य को सम्यग् ज्ञान नहीं है वह शुद्ध रूप से क्रिया-काण्ड का किस प्रकार पालन कर सकता है? बिना ज्ञान के शुद्ध क्रिया के स्थान में अशुद्ध क्रियाका होना सर्वथा संभव है।

अस्तु—मोक्षाभिलाषी मनुष्यका कर्तव्य है कि वह प्रथम सम्यग् ज्ञान का संपादन करे, बिना ज्ञान संपादन किए, क्रिया करने के लिए आगे कदम बढाना खतरनाक है, क्योंकि बिना सम्यग् ज्ञान के मनुष्य अपने लक्ष्य—बिन्दु पर अटल नहीं रह सकता। सम्यग् ज्ञान ही अन्तरहृदय की विवेक दृष्टि को समुन्मीलन करता है। सत्य—असत्य धर्म—अधर्म पुण्य—पाप आदि की समझ अर्थात् "कौन-कौन से मार्ग हेय हैं और कौन-कौन से मार्ग आदेय हैं" यह जानने वाला भी ज्ञान ही है। इस विश्वमें मेरे जन्मका क्या प्रयोजन है? मेरे जन्मकी सार्थकता किसमें रही हुई है? मेरा जगतके केवल दूसरे मनुष्यों के साथ ही नहीं बल्कि संसार के समस्त क्षुद्र प्राणी वर्ग के साथ क्या सम्बन्ध है? मुझे इस संसार में किस प्रकार चलना चाहिए कि

मेरी इष्ट सिद्धि होसके? इन सब बातों को पूरे तौर से जनाने वाला सूर्य सदृश ज्ञान ही है। सूर्य तो दिनके समय में वहभी बाह्यपदार्थों का ही बोध कराता है परन्तु, ज्ञानतो दिन, उसीतरह रात्रि हर समय अन्तरहृदय के चक्षु जागृत कर-अपने को वस्तुमात्र का भान कराता है अतः ज्ञान यह सूर्यसे भी अनंतानंत अधिक है।

अस्तु—अब ज्ञान प्राप्ति के क्या साधन हैं? इस प्रश्नका उत्तर दिया जाता है कि-ज्ञान प्राप्ति का मुख्य साधन सत्समागम है। जैसे सत्समागम की एक घड़ी अपने को ज्ञान देकर अपना जीवन उच्च बनाने को समर्थ है। वैसा प्रबल साधन संसार में दूसरा एकभी नहीं है। पुस्तक हमारे हृदय पर जो असर करती हैं—दुनियां के अन्य प्रसंग हमें जो अनुभव देते हैं— इन सबकी अपेक्षा सत्समागम अधिक कर सकता है। कारण कि पुस्तक और प्रसंग निर्जीव वस्तु हैं, पर सत्पुरुष तो चैतन्य वाले हैं। जड़ वस्तु की अपेक्षा चैतन्य अपने चैतन्य पर प्रबल असर करता है। आत्मा आत्मा की वाणी स्पष्टतः समझती है। सत्पुरुष अपने विशुद्ध कार्यों से दूसरों को अनुकरण करनेलायक दृष्टान्त देते हैं। उनकी उपदेश भरी वाणी भी अन्य पुरुषों को सन्मार्ग पर चलाती है। सत्पुरुषों के संग से हृदय की अज्ञान कालिमा दूर होती है और ज्ञान सूर्य की प्रभा परिवर्द्धित होती है।

ज्ञान प्राप्ति के निम्नांकित साधनों पर भी पूर्ण लक्ष्य देना-चाहिये- (१) ज्ञानी पुरुषों के साथ प्रेम पूर्ण व्यवहार करो (२) ज्ञानी पुरुषों के उपकार के प्रति कृतज्ञता प्रकाश करो—

सत्यतत्व को मत छिपाओ (३) विद्यार्थियों की विशेषतः अनाथ विद्यार्थियों की पुस्तकादि समुचित साधनों से सहायता करो (४) ज्ञान प्राप्ति का उचित समय मिलने पर न स्वयं आलसी बनो और न दूसरों को बनावो (५) पुस्तक प्रकाशक मण्डल, गुरुकुल, विद्यालय, पुस्तकालय आदि ज्ञानोत्पादक संस्थाओं की स्थिति को तन मन धन से सुदृढ करो (६) प्राप्त ज्ञान का कभी भूलकर भी घमंड न करो कि, हम ऐसे धुरंधर ज्ञानी हैं (७) अच्छी बात जिस किसी भी व्यक्ति या मत में हो हर्ष पूर्वक ग्रहण करो और बुरी बात स्वयं अपने में या अपने मत में ही हो- बिना किसी संकोच के झटपट छोड़दो (८) थोड़ा बहुत जो कुछ भी जानते हो, यदि कोई जिज्ञासु पूछे तो बताने से टाल मटोल मत करो—जैसा जानते हो वैसा बिना गर्व के स्पष्ट बतादो आदि आदि।

मुक्ति का दूसरा साधन ज्ञान के पीछे होने वाला क्रिया-चारित्र है। बिना चारित्र के भी कुछ नहीं बन सकता। जैन दर्शन जितना ज्ञान प्रधान है उतना ही चारित्र प्रधान भी है। गृहस्थ समाज तथा साधु समाज के पूर्णता और अपूर्णता के भेदों से जैन चारित्र मुख्यतः पाँच प्रकार का है। अर्थात् चारित्र पाँच प्रकार का है वह गृहस्थ का तो अपूर्ण रहता है और साधु का पूर्ण रहता है। चारित्र के पाँच भेद ये हैं—१ अहिंसा २ सत्य ३ अस्तेय ४ ब्रह्मचर्य ५ अपरिग्रह। पूर्वोक्त अहिंसा आदि पंच व्रतों की रक्षा के लिए जैन शास्त्रकारों ने मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ नामक चार भावनाएँ बतलाई हैं।

मैत्री- मैत्री वृत्ति प्राणी मात्र में फैलीहुई हो तभी प्रत्येक प्राणी के प्रति अहिंसक और सत्यवादी आदि तरीके से

.। सकता है। अतः मैत्री भावना का विषय प्राणी मात्र मैत्री-यानी दूसरों में अपने पणे की बुद्धि और उसी से .पने समान ही दूसरों को दुखी न करने की इच्छा।

प्रमोद — मनुष्यों में अधिक तर डाहकी वृत्ति देखी जाती है। जब तक इस डाह का नाश नहीं हो पाता तब तक अहिंसा सत्यआदि व्रत किसी भी प्रकार से नहीं टिक सकते। अतः दूसरों की उन्नति को देख कर उत्पन्न होने वाले डाह के नाश के लिए प्रमोद की भावना है। प्रमोद यानी अपने से अधिक गुण-वालों के प्रति आदर करना और उनकी उन्नति देखकर प्रसन्न होना। इस भावना का विषय मात्र अधिक गुणवान ही है। उसी के प्रति ही असूया आदि दुर्वृत्तियाँ होती हैं।

कारुण्य-किसी पीडित को देखकर हृदय में अनुकंपा नहीं आवेतो अहिंसा आदि व्रत निभही नहीं सकते। अतः करुणा भावना अतीव आवश्यक है।

इसका विषय मात्र दुःखी प्राणी ही हैं कारण कि अनुग्रह और मदद की अपेक्षा दुखी दीन और अनाथ कोही रहती है।

माध्यस्थ- प्रत्येक समय में और प्रत्येक स्थल में मात्र प्रवृत्यात्मक भावनाएं ही साधक नहीं हो सकती। बहुत सी दफा अहिंसा आदि व्रतों की रक्षा के लिए मात्र माध्यस्थ-तटस्थ रहना ही उपयोगी होता है। माध्यस्थ-यानी जब अत्यंत जड़ संस्कार के-किसी भी सदुपदेश को न ग्रहण करने वाले-उद्दण्ड, निष्ठुर, अभिमानी व्यक्ति मिलें तब उनके विरुद्ध व्यवहार पर अपने चित्तको विकृत नही होने देना-तटस्थ भाव रखना।

यथार भावना पूर्वक अहिंसा आदि पंचव्रत मुक्ति
द्वितीय साधन है। संसार के अनेक प्राणी इन ज्ञान और चा
के दोनों साधनों से मुक्ति प्राप्त कर गए हैं और करेंगे।

इस लेख में अजितकुमार शास्त्री और प्रभाचन्द्र जैन न्यायतीर्थ
के लेखों से बहुत कुछ लिया है।

"लेखक"

## इति परिशिष्ट खण्डम्

